ऋषि बोध

RISHI BODH

आर्य सभा मॉरीशस

ARYA SABHA MAURITIUS

आर्योदय - विशेषांक
Aryodaye - Special Issue

CONTENTS

विषय-सूची

पृष्ठ Page

हमारा आभार - डा० उदय नारायण गंगू, *प्रधान सम्पादक* 1

The Relevance of Rishi Bodh - Dr Roodrasen Neewoor, *Arya Bhushan, G.O.S.K., Honorary President Arya Sabha Mauritius* 2

सम्पादकीय - एक पुण्यात्मा - श्री बालचन्द तानाकूर, *पी.एम.एस.एम, आर्य भूषण, प्रधान आर्य सभा मॉरीशस* 3

बोधरात्री पर हमें पूछना है ..... - डा० उदय नारायण गंगू, *ओ.एस.के, आर्य रत्न* 4

महाशिवरात्रि एवं महाबोधरात्रि - श्री सत्यदेव प्रीतम, *सी.एस.के., आर्य रत्न, उपप्रधान आर्य सभा* 5-6

ऋषि बोधोत्सव - श्री हरिदेव रामधनी, *आर्य रत्न, मन्त्री आर्य सभा मॉरीशस* 7

ऋषि दयानन्द और संस्कृति - आचार्य विरजानन्द उमा, *एम.ए., प्रधान आर्य पुरोहित मण्डल* 8

महर्षि दयानन्द की दिव्य-दृष्टि - पंडित धर्मेन्द्र रिकाई, *आर्य भूषण* 9

ऋषि बोध दिवस - श्रीमती धनवन्ती रामचरण, *एम.एस.के., आर्य रत्न* 10

'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेअमृतोपमम् - *गीता* – डॉ० बीरसेन जागासिंह 11-12

महर्षि दयानन्द का गत्यात्मक दृष्टिकोण (दर्शन) - श्री प्रह्लाद रामशरण 13-16

ऋषि बोधोत्सव - श्रीमती भगवन्ती घूरा 16

कैलाश यात्रा - विश्वदेव मुनि, वानप्रस्थी 17

तीर्थ-यात्रा और यात्री - श्री सोनालाल नेमधारी, *आर्य भूषण* 18

जन संख्या - पंडित देवानन्द गरबा 19

महर्षि के व्यक्तित्व और विभिन्न विद्वानों के विचार - पंडिता प्रेमिला सिरतन 19-20

महर्षि दयानन्द के ग्रन्थ - पंडिता दमयन्ती चिन्तामणि 21-22

परमेश्वर कैसा है ? - Shri Narainduth Ghoorah 23-24

Swami Dayanand - L'apôtre de Dieu - Dr Indradev Bholah Indranath 24

Apta Purusha, Maharishi Dayanand Saraswati - Shri Bramdeo Mokoonlall 25-27

The Enlightenment of a Seer (Rishi Bodh) - Shri Sookraj Bissessur 28

The Fast Leading to the Enlightenment of the Greatest Emancipator of Mankind - Pt. Manickchand Boodhoo, *Arya Bhushan* 29-30

Maharshi Dayanand Saraswati - Miss Renuka Bissessur 30-31

World Vedic Conference 2014 - Paper Presentation - Pt. Yaswantlall Chooromoonay, *M.S.K., Arya Bhushan* 32-33

International Vegetarian Association (IVA) Across the Ocean - Darshanacharya Ashish ji 34

Ten Principles of Arya Samaj 35

हमारा आभार

'ऋषि बोध' के शुभावसर पर यह विशेषांक सुधी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है । लेखक-लेखिकाओं ने सभा के निवेदन पर लेख भेजे । सबके प्रति हम आभार प्रकट करते हैं ।

कुछ लेखों में विचारों की द्विरुक्ति हुई है । समयाभाव के कारण हम सम्पादन-कार्य में पूर्णतया समर्थ न हो सके । अपनी असमर्थता का हमें खेद है ।

डा० उदय नारायण गंगू
प्रधान सम्पादक

The Relevance of Rishi Bodh

Dr Roodrasen Neewoor, Arya Bhushan, G.O.S.K.,
Honorary President Arya Sabha Mauritius

Rishi Bodh is celebrated to mark the enlightenment of an outstanding youth, Moolshankar, on the auspicious occasion of Shiv Ratri. The latter was destined to become a Rishi, an uncontested Vedic scholar, a great philosopher as well as the greatest reformer that modern India has produced.

Rishi Dayanand has left his imprint in almost all walks of life in India and abroad where Indians have settled. In the field Education, he advocated eudcation for all He was of the view that education should be provided by the state free of charge and everyone should benefit from the same irrespective of caste, class or creed. It should be recalled that those days the literacy rate was only 2% in India and the bulk of women were illiterate as they had been debarred from learning altogether. Superstition as well as blind faith was wife. Swamiji was of the opinion that the root cause of these problems was lack of knowledge. He therefore stressed on the promotion of knowledge.

He infused a sense of patriotism among the Indians and was the first to raise the slogan of swarajya in modern times. In fact, he coined the word Swaraj in 1874 in his Magnum Opus - "the Light of Truth". More than a decade prior to the creation of the Congress party. Which was in 1885. He had pleaded for the use of Khedi and Swadeshi -- local made products. His pressing call for Harijan uplift, emancipation of women. Hindi as the national language for India, prohibition, his drive for diffusing knowledge and dispelling ignorance are facts that speak for themselves.

Mahatma Gandhi as a matter of fact followed his footsteps in many respects. His remarks that nobody has done as much as Swami Dayanand for the betterment of the down trodden and also his praiseworthy statements on Arya Samaj are quite revealing. Dr Radhakrishnan's statement about Swami Dayanand is equally important. He said "Many provisions about social welfare in the constitution of India owe their inspiration to the teachings of Swami Dayanand.

To provide help to the needy is another aspect on which Swamiji had put a lot of emphasis - this can be noted from his 9th principle which reads as follows "one should not be content with one's welfare alone, but should look for one's welfare in the welfare of all.

Swami Dayanand has mastered all the four Vedas and he stressed that the Vedas are the store house of knowledge. Their messages are universal and they are meant for humanity at large. Back to Vedas therefore was his clarion call. While going through the life of this great Rishi; we realise the relevance of Rishi Bodh. Had the enlightenment of this unique personality not taken place on the auspicious occasion of Siva Ratri in Tankara what would have been the fate of India to-day is a big question mark. Hence, the importance and relevance of Rishi Bodh. •

सम्पादकीय

एक पुण्यात्मा

भारत का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि जब भी कभी भारतीयों पर महासंकट पड़ता रहा और रक्षा करने वाला कोई नहीं दीखता था, तब कोई न कोई महा मानव उन असहाय, अनाथ दीन-दुखियों का उद्धार करने के लिए उस पुण्य-भूमि पर जन्म लेता रहा और देश, काल, परिस्थिति के अनुसार सामाजिक-सुधार करके भारतीय जनता का उद्धार करता रहा।

वह पुण्यात्मा धार्मिक जनों की रक्षा करने हेतु तथा दुष्टों, अपराधियों, अधर्मियों, शोषकों और अत्याचारियों का विनाश करके पुनः सत्य धर्म, सच्ची ईश्वर भक्ति, मानवीय-प्रेम, न्याय और जीवन दर्शन का पाठ पढ़ाता रहा। उसके क्रिया कलापों से मानव समाज कुछ न कुछ ग्रहण करता रहा है। वह महामानव जाति समाज और राष्ट्र का प्रहरी बनकर जीवन समर्पित करता रहा। वह वरद-पुत्र परिस्थितियों से घबड़ाता था नहीं, अपितु परिस्थिति उसकी दासी हो जाती थी। उसका प्रत्येक कार्य भिन्न होता था अर्थात् परिस्थिति उसके आंदोलन अनुकूल हो जाती थी, और लोगों के लिए एक प्रमाण स्वरूप बन जाता था। उस महापुरुष पर विश्वास करके मानव जाति उसी का अनुसरण करने लगती थी।

उन पुण्यात्माओं में से वेद-रक्षक तथा जन-उद्धारक देव दयानन्द थे, जिस समय वे भारत के रंगमंच पर आये थे, उस समय हिन्दू समाज में कई प्रकार की कुरीतियाँ, कुप्रथाएँ आदि फैली हुई थीं। दम्भी पाखण्डियों, स्वार्थियों और ठगेरों का बोलबाला था, भारत में सर्वत्र अन्धविश्वास फैला हुआ था। वेदों के स्थान में भ्रष्ट ग्रन्थों का सर्वत्र प्रचार था। वैदिक-विद्याएँ एक सच्चे शिक्षक की खोज में तड़प रही थीं। वेदों का पठन-पाठन तो मन्त्र-पाठ तक सीमित था। यज्ञवेदी पर बैठकर पाठ कर लेना और आहुति देना ही पर्याप्त समझा जाता था । मन्त्रार्थ का परिज्ञान लोगों को बिल्कुल नहीं था। वैसी गम्भीर स्थिति में वेद प्रकाशक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों का सत्यज्ञान मानव को अर्पित किया, उसका सही अर्थ समझाया जिससे वेदों का पुनः उत्थान हो पाया । हम सदा उनके आभारी रहेंगे।

सत्यप्रकाशक देव दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश रूपी दीप प्रज्वलित करके मानव-समाज को सत्यज्ञान प्रदान किया । आज हम उसी की अखण्ड ज्योति के तले दीर्घकालीन अज्ञानता के घोर अंधकार से प्रकाशित हुए। हम पाखण्डियों, अन्धविश्वासों, अपराधियों और दुराचारियों के दुर्व्यवहारों से दूर होते रहे।

समाजशास्त्री दयानन्द ने हमारे समाज से हर प्रकार के भेदभाव को मिटाकर सभी को एक मन्च पर खड़ा किया, जिससे आज मानव समाज में एक नया जागरण उत्पन्न हो गया।

महर्षि जी ने आर्य समाज की स्थापना करके वैदिक धर्म का प्रचार किया, वैदिक संस्कृति का पुनः उद्धार किया और मानव का कल्याण किया। हुतात्मा दयानन्द जी की दृष्टि से मानव जीवन का कोई भी पक्ष अछूता नहीं रहा, जिसपर उन्होंने प्रकाश न डाला हो। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक कोई भी ऐसा विषय न रहा हो, जिसपर महर्षि ने दृष्टि न डाली । चाहे वह धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक, सामाजिक, शैक्षिकक्षेत्र हो, उस पुण्यात्मा ने उनपर अवश्य ही प्रकाश डाला, जिन कारणों से मानव जाति का समूचे रूप से कल्याण हो पाया।

१९वीं शताब्दी में ऋषिवर दयानन्द जी एक युग पुरुष माने जाते हैं। उनके समान सच्चे ईश्वर-भक्त, धर्मात्मा, जन-उद्धारक, दयालु, कृपालु, स्नेह, समाज-सुधारक, सत्यप्रकाशक और ज्ञानवर्धक - इस युग में कोई भी नहीं । देव दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना करके सम्पूर्ण भारतीयों में एक नई चेतना उत्पन्न की। भारतीय जनता में एक अद्‌भुत जागृति पैदा की। उनकी विचार-धाराओं से प्रभावित होकर आर्य समाज के सेनानियों ने सर्वत्र वैदिक-धर्म एवं आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया। आज आर्य समाज के आंदोलन कार्यों से अति प्रभावित होकर असंख्य प्राणी एक साथ मिलकर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। विश्व के जिस कोने में आज आर्य समाज स्थापित है, वहाँ मानव समाज में प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। हम उस पुण्यात्मा के प्रति सदा ऋणि रहेंगे।

दयानन्द जयन्ती एवं ऋषिबोधोत्सव हम समस्त आर्य परिवारों के लिए एक महान् पर्व है। इन दोनों पर्वों के अवसर पर हमें बड़े ही उत्साह, हर्षोल्लास और आस्था पूर्वक अपने-अपने समाजों में भव्य कार्यक्रम का आयोजन करना चाहिए। पुरोहित-पुरोहिताओं द्वारा यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए। विद्धान्-विदुषियों को आमंत्रित करके उनके प्रवचनों से लाभ उठाना चाहिए। अपने परिवारों में हमारे उभरते हुए बच्चों और युवा वर्गों को महर्षि जी के तपोमय जीवन से प्रेरित करना चाहिए, ताकि वे देव दयानन्द के आदर्श जीवन से प्रभावित होकर सच्चे आर्यपुत्र बनें। आर्य सभा की ओर से यही कामना है कि दयानन्द जयन्ती एवं ऋषिबोधोत्सव समस्त हिन्दू भाई-बहनों के लिए अवश्य प्रेरणादायक बनें।

बालचन्द तानाकूर

बोधरात्रि पर हमें पूछना है .....

डा० उदय नारायण गंगू, ओ.एस.के.,आर्य रत्न

बालक मूलशंकर ने महाशिवरात्रि को आर्यों का पर्व 'बोधरात्रि' बना दिया । स्वयं बोध पाकर महर्षि के पद पर आसीन हो गये । प्रश्न है, क्या शिव-प्रतिमा पर मूषकों की क्रीड़ा देखने मात्र से उन्हें पूर्ण बोध हुआ? उत्तर है नहीं । उस दृश्य से तो इतना ही जान पाये कि यह मूर्ति कल्याणकारी शंकर नहीं। मैं असली शिवशंकर को पाकर ही चैन की साँस लूँगा ।

बस मूलशंकर की दीर्घ यात्रा उस समय तक होती रही, जब तक उनमें वेद-भाष्य की क्षमता न आ गई । वे कठोर तप-त्याग के द्वारा मन्त्र-द्रष्टा बनकर ऋषित्व से सुशोभित हो गये । यही 'ऋषि बोध' है।

महर्षि ने अनार्यों को आर्य बनाने का अभियान चलाया। इस स्वप्न को साकार करने में उन्हें कौन-से कष्ट झेलने नहीं पड़े। अन्ततः आर्यसमाज की स्थापना करके सिंहनाद किया – *'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'*

ऋषिगण अपनी बात सूत्रात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं । 'वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना' वाक्यांश में वेद को समझना, उसके उपदेशों को मानना और आचरण में परिणत करना भी निहित है ।

बोध रात्रि पर पूछना यह है कि क्या आर्यों ने सचमुच वेद पढ़ा, समझा और उसे हृदय से माना? यदि माना होता तो आज हिन्दू समाज का एक दूसरा ही रूप होता। सभी एकेश्वरवादी होते । सभी ईश्वरीय न्याय में अटूट विश्वास रखते । सभी एक ही सर्वशक्तिमान परमात्मा की उपासना करते। सभी मानवता को महत्व देते। जन्म के आधार पर जात-पाँत का बखेड़ा खड़ा नहीं होता। उन्हें बोध होता कि गुण, कर्म, स्वभाव से ही उत्तमता और अधमता का निर्णय होता है । यह बोध होता कि परमेश्वर न्यायकारी होने से शुभ-अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही देते हैं ।

हमारा दुर्भाग्य है कि हमने वेद का सम्मान नहीं किया । आर्यसमाज के सदस्य होने के कारण बोधरात्रि पर हम सप्तम स्वर में महर्षि दयानन्द का जयघोष करते हैं। क्या हम दयानन्द को समझने की क्षमता पा सके? हमारा दावा है कि बहुत से ऐसे जन है, जो यद्यपि आर्यसमाज के सदस्य नहीं बने, तथापि वे महर्षि को आर्यसमाजियों से कहीं अधिक समझ सके हैं। उदाहरणार्थ अनगिनत लोगों में से हम भारत के वर्तमान प्रधान मन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी का नाम लेना चाहेंगे। वे महर्षि के प्रति अपना उद्‌गार प्रकट करते हुए लिखते हैं – 'गुजरात के टंकारा में जन्म लेकर एक युग प्रवर्तक समाज-सुधारक ने सन् १८५७ की क्रान्ति का भी रण टंकार किया था। स्वामी जी एक राष्ट्रवादी संन्यासी थे। उन्होंने धार्मिक और सामाजिक जीवन में फैली कुरीतियों के विरोध द्वारा उस युग को प्रभावित और बोधित करने का कार्य किया । अपने सम्पूर्ण जीवन नारी-शिक्षा के प्रवर्तक और समर्थक रहे । श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती परम क्षमाशील पुरुष थे। 'सत्यार्थप्रकाश' ग्रन्थ उनका चिंतनशील धर्म प्रवर्तक कहा जाय, वैसा अमूल्य प्रदान था।'

पाठकवृन्द ! कृपया उपर्युक्त उद्धरण के अंतर्गत यह वाक्य रेखांकित करें – 'उन्होंने धार्मिक और सामाजिक जीवन में फैली कुरीतियों के विरोध द्वारा उस युग को प्रभावित और बोधित करने का कार्य किया।' प्रश्न है क्या हम अपने युग को प्रभावित और बोधित करने का कार्य कर रहे हैं ?

महर्षि का जयघोष करने वाले माने या न माने, परन्तु यही सोलह आने सच है कि जब तक हम वेद-स्वाध्याय नहीं करेंगे और वेदाज्ञा को हृदय से स्वीकार नहीं करेंगे तब तक हमें बोध प्राप्त नहीं होगा । हम महर्षि के अनुयायी नहीं बन सकेंगे ।

महर्षि को समझने के लिए वैदिक सत्य को जानना होगा । महर्षि दयानन्द के ऋग्वेदभाष्य को पढ़कर मैक्समूलर सरीखे विद्वान् को कहना पड़ा – centuries are required to understand Dayanand. •

महाशिवरात्रि एवं महाबोधरात्रि

सत्यदेव प्रीतम, सी.एस.के, आर्य रत्न,
उपप्रधान आर्य सभा मॉरीशस

इस वर्ष फाल्गुन कृष्ण दशमी (१०) को दयानन्द जयन्ती है और फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी (१३) को महाशिवरात्रि है इस लिए वर्षों से हम फरवरी मास को दयानन्द मास से अभिहित करते आ रहे हैं ।

ऐसी बात नहीं कि दयाल जी या मूलशंकर पहली बार शिव मंदिर में शिवरात्रि के मौक़े पर गया था। दयानन्द की विभिन्न जीवनियाँ पढ़ने पर पता चलता है कि उनके पिता करसन जी तिवारी कट्टर शिव भक्त थे। हिन्दू धर्म के शैव मत के पक्के पुजारी थे। यद्यपि पेशेवर पुरोहित नहीं थे क्योंकि वे लेन-देन का कारोबार करते थे। अपने राजा के यहाँ तहसीलदारी करते थे। तहसीलदार थे इस लिए उन्हें कई सरकारी सिपाही मिले हुए थे। क्योंकि आपने पढ़ा होगा जब जड़ेश्वर शिवमंदिर में मूल जी ने पिता जी से प्रश्न किया था तो पिता जी ने सिपाही के साथ उसे घर भेजा था।

स्वामी जी अपनी लघु आत्मकथा में लिखते हैं कि जब १३ साल समाप्त हो गए, १४ वें साल में पदार्पण किया तो पिता जी ने मूलशंकर को व्रत रखने का आदेश दिया । करसन जी तिवारी सख़्त प्रकृति के पुरुष थे। वे जब कुछ ठान लेते थे तो पूरा करके ही दम लेते थे।

माता जी ने बहुत मनाया कि दयाल जी अभी अल्प वयस्क है। व्रत रखना उसके लिए आसान नहीं होगा। क्योंकि वह बहुत सवेरे भोजन कर लेता है । समय पर भोजन न करने से उसके स्वास्थ्य पर असर पड़ेगा। अन्त में उसकी पढ़ाई में अवरोध भी पैदा होगा।

पिता, करसन जी तिवारी को शिव परम्परा का ध्यान पुत्र के स्वास्थ्य से ज्यादा था। वह कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे। वह चाहते थे कि मूलशंकर नियम अनुसार व्रत रखे और रात्रि जागरण भी करे । मूलशंकर को तैयार करने के लिए शिवपुरण के अनुसार कथा सुनाई। कथा सुनाते वक्त पिता जी ने पुत्र को आश्वासन दिया कि मंदिर में सच्चे शिव का दर्शण होगा । इसलिए माँ के मना करने पर भी पिता जी का कहना मान लिया इस उत्कट अभिलाषा से कि शिव जी का दर्शन होगा ।

आख़िर महाशिवरात्रि का पर्व आ ही गया । १३ वर्षी बालक, पिता जी और बहुत से शिव भक्त नगर के बाहर एक बड़े शिव मंदिर में जाने के लिए तीन मील का फ़ासला तैय करके पूजा स्थल पर पहुँचे । मूलशंकर बड़ा उतावले थे शिव दर्शन के लिए । उसके लिए बहुत बड़ी बात थी। इस प्रकार दो पहर की पूजा हो गई । तीसरा पहर आ गया। आँखों में छींटे देदे कर जागते रहे। निद्रा और आलस्य ये मनुष्य के बड़े दुशमन है। पिता जी पुजारी सहित और शेष सभी लोग निद्रा की गोद में चले गए । आधी रात का वक्त बाहर अन्धेरी रात, हाथ को दिखाई नहीं देता।

एक एकेला तेरह वर्षीय बालक, अभी अभी तेरह साल समाप्त हुए थे। शिव मंदिर में मूल जी देखते हैं शिव जी की पिण्डी पर कुछ चूहे उछल कूद करने लगे । यह सब देखकर दयाल जी को बेहद आश्चर्य हुआ कि जिस रूप में शिव जी को पिता ने प्रस्तुत किया वह तो नहीं दिखाई दे रहा। मन में तरह तरह की शंकाएँ उठने लगीं ? क्या यही महादेव हैं? या यह कोई और है, क्योंकि वह तो मनुष्य की तरह एक देवता है, कैलाश का पति, हाथ में डमरू बैल पर सवार। दुश्मनों का संहार करता है । इतना अशक्त कैसे ? क्षुद्र चूहों को भगा नहीं सकता। विचारों के बवंडर में मूल जी का शिर चकराने लगा। इस सब से बचने के लिए उसने पिता जी को जगाया और बड़े उद्विग्नता से पिता जी से प्रश्न करना आरम्भ किया। पिता जी ने पुत्र को शान्त करने के लिए कुछ उत्तर दिये फिर भी मूल जी को संतुष्टि न हुई। अन्त में पिता जी ने कहा कि सच्चे शिव तो कैलाश पर रहते हैं। उसे पाने के लिए वहीं जाना होगा। जब वहीं जाना होगा तो प्रतिमा पूजन और व्रत रखने से क्या फ़ायदा। बालक मूल ने अति दृढ़ता के साथ कहा कि मैं व्रत एवं उपवास दोनों तोड़ता हूँ। पिता जी ने बात को न बढ़ाने की दृष्टि से अपने एक निजी सिपाही से मूलशंकर को घर पहुँचा आने का आदेश दिया

और बेटे से कह दिया घर वापस जा रहे हो पर व्रत तोड़ना नहीं, पाप लगेगा।

यदि करसन जी तिवारी दृढ़ विश्वासी थे तो पिता के पुत्र मूलशंकर की दृढ़ता भी कम नहीं थी। मूलशंकर ने दृढ़ विश्वास कर लिया कि, शिव को प्रत्यक्ष देखकर ही उसकी पूजा करूँगा । मूल जी प्रतिमा की जगह प्राकृत शिव की पूजा करना चाहते थे।

प्रतिमा पूजन और व्रतादि बाहरी अनुष्ठानों से विश्वास उठ गया तो फिर कभी विश्वास नहीं हुआ। केवल उसको विश्वास नहीं हुआ ऐसी बात नहीं। आगे चलकर उसने भारत और भारत के बाहर देश-देशांतरों में द्वीप द्विपान्तरों में सैंकड़ों लोगों को भी अविश्वासी बना दिया। नास्तिक नहीं बनाया बल्कि पक्के आस्तिक बना दिया । निराकार भगवान का विश्वासी बना दिया ।

ऐसी मामूली घटना जो शिव मंदिर में घटी ऐसी घटना याने चूहों को शिव पिण्डी पर उछल-कूद करना तो आदि काल से होता देखते आ रहे थे पर किसी को ऐसा प्रश्न करने की हिम्मत नहीं हुई थी । प्रश्न तो स्वाभाविक और सरल था परन्तु उसको उठाया एक तेरह वर्ष के बालक मूलशंकर ने ।

जिसको जीवन में बड़ा होना होता है वह कम उम्र में ही अपने बड़प्पन की झलक दिखाना आरम्भ कर देते हैं। इसलिए कहावत प्रसिद्ध है - 'होनहार बीरवान के होते चिकने पाता।'

ऐसे कितने महान् पुरुषों के उदाहरण हैं दुनिया के इतिहास में जिनका बाल्य जीवन ही निः संदेह किसी न किसी अंश में महापुरुष होने की झलक देने लगते हैं ।

उनकी हरकतें देखकर, उनके हाव-भाव उनकी बातें देख-सुनकर कहा जा सकता है कि वह बड़े होने पर कुछ न कुछ बनेगा या दुनिया को कुछ देकर जाएगा ।

जर्मनी के प्रख्यात कवि, उपन्यासकार, नाटककार, विचारक एवं वैज्ञानिक गेटे (Goethe) जब केवल छः वर्ष के थे तो उन्होंने लिस्बोन के भीषण भूकंप का समाचार सुनकर कहा था, 'तो ईश्वर फिर दयालु कैसे हैं?'

यह बात सुनकर तो हमारे कान पक गए हैं कि इंग्लैण्ड निवासी आई ज़ाक न्यूटन ने छाया में बैठे पेड़ से गिरते सेब देखकर एकाएक भान हुआ कि भूमि में गुरुत्वाकर्षण है वर्ना फल नीचे क्यों गिरा। ऊपर क्यों न चला गया। कपितवस्तु के महाराजा शुद्धोदन के पुत्र राजकुमार सिद्धार्थ से पहले सृष्टि के आरम्भ से ही लोग अर्थी ले जाने का दृश्य देखते आ रहे थे पर शव देखकर ऐसी कौतुहलता नहीं हुई थी जो मृत्यु को जानने की उत्सुकता हुई । वह दृश्य काफ़ी था सिद्धार्थ को भौतिक संसार से वीतरागी बनने के लिए ।

अगर मूलशंकर छोटी बहन और प्रिय चाचा की मृत्यु न भी देखते तो एक दिन पितृ गृह त्यागने के लिए शिव मंदिर की घटना यथेष्ट होती । वह दृश्य बोध की शुरुआत था। उसी सच्चे शिव की चाहने उसे ३६ वर्ष की उम्र में गुरु विरजानन्द की पाठशाला तक जा पहुँचाया । •

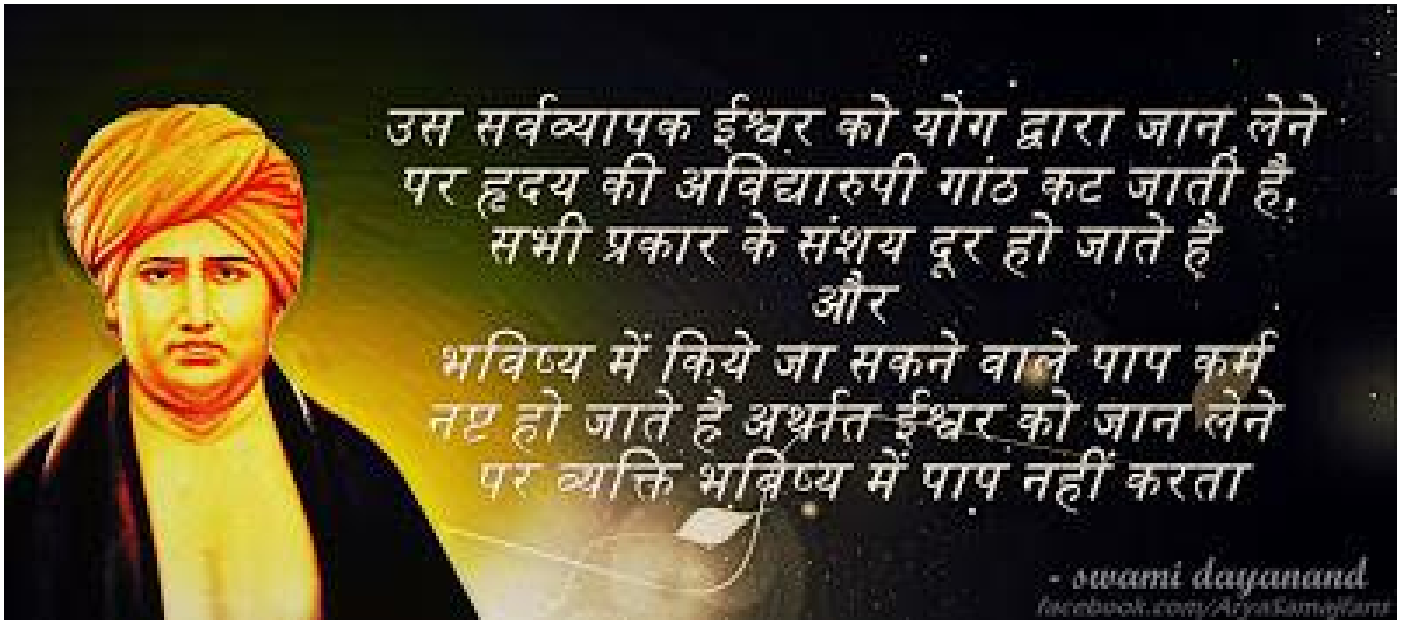

ऋषि बोधोत्सव

हरिदेव रामधनी, आर्य रत्न, मन्त्री आर्य सभा मॉरीशस

ऋषिबोधोत्सव महाशिवरात्रि पर्व से जुड़ा हुआ है, क्योंकि इसी रात्रि के अवसर पर इस युग के सबसे महान् समाज सुधारक एवं वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती का ज्ञान प्रदीप्त (Enlightment) हुआ था। यह घटना सिर्फ़ बालक मूलशंकर के लिए ही नहीं अपितु पूरे मानव मात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुई। क्योंकि जिस तरह ऋग्वेद कहता है – **यो जागार समरिचः कामयन्ते** – की वह निद्रा से इस तरह जागा कि फिर कभी सोया ही नहीं। अर्थात् उनके ज्ञान-आकाश के ऊपर कभी भी अविद्या का बादल टिक नहीं पाया ।

यह घटना मानव मात्र के लिए कल्याणकारी इसलिए सिद्ध हुई, क्योंकि महर्षि दयानन्द चाहते तो सिर्फ़ अपनी भलाई के लिए हिमालय पर जाकर योग साधना के माध्यम से मुक्ति पा सकते थे, मगर उन्होंने गुरु विरजानन्द को दिये हुए वचन का पालन करने के लिए मानव समाज, जो अविद्या-अंधकार, अंधविश्वास, ग़लत परंपरा, रूढ़िवाद, महिलाओं के ऊपर अन्याय और अत्याचार जैसे अभिशाप से ग्रस्त था, उसको वेदों के सत्तज्ञान के द्वारा मुक्त करना अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया और इसी के कारण उसके जीवन का अंत भी हुआ ।

उस समय अविद्या अंधकार इतना फैला हुआ था कि व्यक्ति को न सत्तज्ञान का पता था, ना ही सत्य पहचानने की शक्ति थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आवाज़ बुलंद की कि *'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।'* अतः उन्होंने चारों वेदों तथा अन्य आर्षग्रन्थों को (जैसे मनुस्मृति, दर्शन, स्मृतियाँ और उपनिषदों) को अपने धर्म प्रचार का आधार बनाया ।

महर्षि दयानन्द ने अविद्या अन्धकार एवं अन्धविश्वास के विरोध में एक अभियान चलाया, अतः हरिद्वार में कुम्भ के मेले में हीं उन्होंने पाखण्ड-खण्डनी पताका गाड़ी और सत्तज्ञान के प्रचार को एक आन्दोलन का रूप दिया। इसी आन्दोलन को बढ़ाने के लिए उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की । कृपा उस महर्षि की जो आज शिक्षित व्यक्तियों की संख्या गुणात्मक रूप से बढ़ी है। विज्ञान में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, लोगों की समझदारी बढ़ी है, पर ऐसे में भी कुछ लोगों का कहना है कि अब आर्यसमाज की क्या आवश्यकता है ?

थोड़ी देर के लिए हम सोचें तो आपको दिख पड़ेगा कि आज आर्य समाज की आवश्यकता पूर्व से कहीं ज़्यादा है। आज फिर ज़रूरत है पाखण्ड-खण्डनी पताका फहराने की, क्योंकि सामाजिक कुरीतियाँ बढ़ रही हैं । पूजा-पाठ में पाखण्ड बढ़ रहा है। धर्म के नाम पर आडम्बर का बोलबाला हो रहा है। निहित स्वार्थवश नये-नये देवी-देवता पैदा हो रहे हैं। इस शिक्षित युग में भी बड़ी आसानी से भगवान् बनकर या भगवान् बनाकर लोगों को ठगा जा रहा है। धर्मांध लोग उनकी पूजा अर्चना कर रहे हैं ।

सामाजिक कुरीतियों में जातिवाद पुनः पनप रहा है। आवश्यकता है इन कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करने की। यह काम कौन करेगा ? कोई और नहीं करेगा । आर्य समाज को ही करना होगा। सुनियोजित ढंग से कार्य योजना बनाकर, उन्हें कार्यान्वित करना होगा ।

आज परम्परा के नाम पर पुनः पशु बलि किया जा रहा है जो बहुत मुश्किल से आर्य समाज ने हमारे पवित्र कृत्यों से इसका निराकरण किया था।

महर्षि ने फलित ज्योतिष के खिलाफ़ भी आवाज़ उठाई थी क्योंकि ये व्यक्ति को कमज़ोर बना देता है । आज इसकी बोल-बाला Internet एवं रेडियो टी.वी. आदि साधनों से इतना किया जा रहा है कि मन में प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच में हमारी जनता शिक्षित और वैज्ञानिक है जो इस पर विश्वास करता है । आज पुनः विवाह से पहले कुण्डलि देखने की प्रथा प्रचलन हो रही है ।

आज ऋषिबोध के अवसर पर हमें जनता को बोध कराना है उन्हें जागृत कराना । सत्तज्ञान का पाठ पढ़ाना है। यह सब काम अब नहीं तो कब होगा? आर्य समाज नहीं तो कौन करेगा? स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना इन्हीं सब कार्यों को करने के लिए की थी। आज समाज को पुनःजागृत करने की अति आवश्यकता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के क्रान्तिकारी आंदोलन को फिर सक्रिय करना है।

ऋषिबोध उत्सव के इस पवित्र अवसर पर समस्त जनता से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि आप भी अपने हिस्से का योगदान प्रदान करें जिससे हम समाज को अंधविश्वास और अंधपरम्परा से मुक्त कर सके । उस महान् कवि के शब्दों में शब्द मिलाते हुए हम व्रती बने कि :

दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे । दयानन्द का काम पूरा करेंगे ।।
उठाएँगे धर्म ध्वजा को, लिए फिरेंगे । उसी के लिए हम जिएँगे-मरेंगे ।। •

ऋषि दयानन्द और संस्कृति

'सा प्रथमा संस्कृति विश्वारा'

यजु० ७/१४

आचार्य विरजानन्द उमा, एम.ए., प्रधान आर्य पुरोहित मण्डल

हमें अपनी संस्कृति और सभ्यता पर गर्व होना चाहिए । भाषा, सभ्यता और संस्कृति तीन देवियों की भाँति हमारी रक्षा करती हैं । ऋग्वेद में तीन देवियों के बारे में संकेत किया गया है। मन्त्र इस प्रकार है –

इळ्ळा सरस्वती मही तिस्त्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्व सिधः ।।

ऋ० १/१३/९

शब्दार्थ: - (**इळ्ळा**) मातृ भाषा, (**सरस्वती**) मातृ सभ्यता एवं संस्कृति और, (**मही**) मातृभूमि, (**तिस्त्रः देवीः**) ये तीनों देवियाँ, (**मयोभुवः**) कल्याण करने वाली हैं; अतः ये तीनों (**अस्त्रधिः**) सम्मान एवं आदर पूर्वक, अहिंसित होती हुई (**बर्हिः**) अंतःकरण में, हृदय-मन्दिर में, (**सीदन्तु**) बैठें, विराजमन हों ।

भावार्थ – प्रत्येक मनुष्य को अपनी मातृभाषा में श्रद्धा रखनी चाहिए, अपनी भाषा का आदर करना चाहिए। अन्य देशों की भाषाएँ सीखें परन्तु अपनी देश-भाषा को प्रमुख गौरव और महत्व प्रदान करें । वस्तुतः पहली अपनी भाषा का ज्ञान कर फिर अन्य भाषा का अभ्यास करें, प्रायः आज संसार में यह दिखाई पड़ता है कि विदेशी भाषा, संस्कृति और सभ्यता अपनाने में लोगों की रुचि ज़्यादा है और अपनी संस्कृति में कोई भी रुचि नहीं । जब विदेशी परम्परा, सभ्यता एवं संस्कृति को जानकर, मानकर पहचान कर लोग हमारे देश में प्रचार करना शुरू करते हैं तो स्वदेशी भाव का हनन हो जाता है और धीरे-धीरे मातृभाषा, मातृ सभ्यता और मातृभूमि पर आक्रमण करके स्वदेशी भाषा, संस्कृति और सभ्यता का आश्रम लिया जाता है । इसका दुष्परिणाम यह है कि हमारे नवीन पीढ़ी सभ्यता, संस्कृति शून्य हो जायेंगे और कठिनाइयों में पड़ जाएँगे ।

मंत्र के अनुसार ये तीन देवियों (मयोभुवः) कल्याण करने वाली होती है परन्तु जब उसका सम्मान, आदर और यथार्थ प्रयोग में लाया जाए तब । जब किसी भी वस्तु को श्रद्धा से । प्यार से और लगन से प्रयोग में लाते हैं तो वस्तुतः परिणाम सन्तोष जनक होगा है अन्यथा विपरीत आचरण से विनाश ही विनाश है । भारतीय संस्कृति, सभ्यता और भाषा को जानने वालों में हिंसक भाव कभी भी नहीं आता है क्योंकि यह संस्कृति संस्कारित एवं परिमार्जित है, हमारे ऋषि मुनि इसी संस्कृति, भाषा, सभ्यता के कारण आज संसार के मनीषियों में अग्रणी माने जाते हैं और रहेंगे।

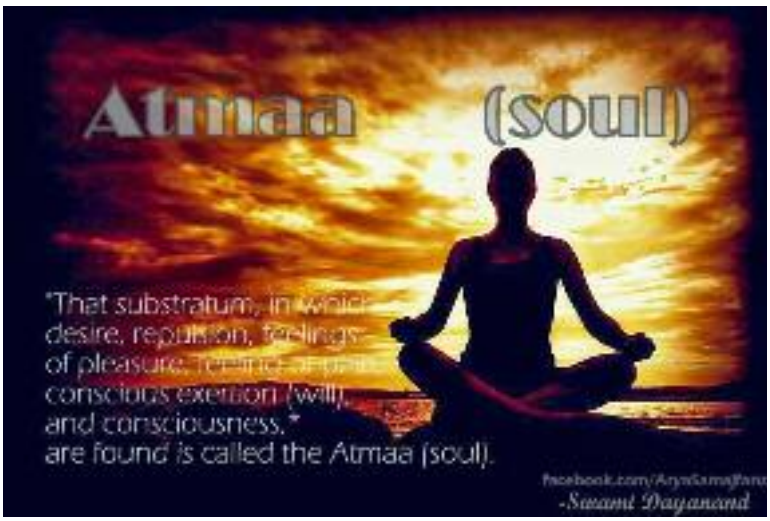

उनमें से अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा, कणाद, कपिल, पतञ्जलि दयानन्द, विरजानन्द आदि ने संसार को अलौकिक ज्ञान प्रदान करके समाज को और चमका कर चले गए ।

अतः प्रत्येक मनुष्यों को अपनी मातृ-भूमि से प्रेम होना चाहिए । चाहे धन कमाने के लिए, अपने को और समृद्ध करने के लिए अन्य देश में चले जायेंगे, परन्तु अपनी भूमि का गौरव गाते रहे और कुछ न कुछ देश-जाति और क़ौम के लिए करते रहे। ये तीनों कवियों का सम्मान करें और आदर करें । •

महर्षि दयानन्द की दिव्य-दृष्टि

पंडित धर्मेन्द्र रिकाई, आर्य भूषण

पश्यतीति पशुः - पशु केवल आँखों से देखता है । वह मनुष्य की तरह विचार नहीं कर सकता । मनुष्य विचार पूर्वक देखता है । ऋषि बिना नेत्रों के प्रज्ञा से देखता है । इसी लिए यास्क मुनि कहते हैं – ऋषि दर्शनात् यहाँ दर्शन का अर्थ दिव्य-दृष्टि से है । दिव्य-दृष्टि केवल ऋषि में होती है ।

दयानन्द ऐसे ही दिव्य-दृष्टि सम्पन्न ऋषि थे, जिन्होंने प्रत्यक्ष के विषय में तो बहुत कुछ कहा है कि साथ ही ऐसे परोक्ष के विषय में भी कहा, जहाँ पर सामान्य मानव की बुद्धि नहीं जा सकती । महर्षि दयानन्द ने कुछ ऐसी बातें कहीं जो उस समय कल्पित तथा उपहासप्रद प्रतीत होती थीं। उन पर उस समय विश्वास करना इसलिए भी कठिन था क्योंकि विज्ञान भी तब तक वहाँ नहीं पहुँचा था। दयानन्द ने उन तथ्यों को अपनी ऋतंभरा प्रज्ञा से देखा और उनके विषय में दृढ़ता पूर्वक घोषणाएँ कीं ।

जिन्हें ज्ञान प्रकाश प्राप्त हो गया है, ऐसे तपस्वी ज्ञानियों को वर्तमान के समान ही भूत तथा भविष्य का भी प्रत्यक्ष हो जाता है । ऋषि दयानन्द ऐसे ही तपस्वी, योगी तथा दिव्य-दृष्टि सम्पन्न ज्ञानी थे कि उनकी उस समय की अविश्वसनीय घोषणाएँ आज विज्ञान द्वारा सिद्ध की जा रही हैं जैसे -

१. महर्षि ने कहा कि पृथ्वी के समान अन्य ग्रहों पर भी सृष्टि है । उस समय यह बात सर्वथा नयी तथा चौकाने वाली थी, किन्तु आज विज्ञान ने उस बात को सिद्ध कर दिया है। सिद्धान्त रूप में यह मान लिया गया कि पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य ग्रहों पर भी निवास योग्य वातावरण है या रहा होगा तथा वहाँ अभी भी बसा जा सकता है। दयानन्द ने किस आधार पर इस बात को कहा था जिसका प्रत्यक्षी कारण आज वैज्ञानिक लोग अरबों-खरबों रुपया लगाकर कर रहे हैं ।

२. आदि मानव कहाँ तथा किस रूप में उत्पन्न हुआ, यह गहनतम प्रश्न है । महर्षि ने स्पष्ट रूप में लिखा कि आदि सृष्टि त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बत पर हुई तथा भूमि के अन्दर से ही वनस्पतियों की भाँति युवावर्ग उत्पन्न होकर बाहर आये । यह अमैथुनी सृष्टि थी। आज तिब्बत अतिशीत प्रधान है किन्तु वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में वहाँ का जलवायु ऐसा न था। आज परखनली (Test tube) से संतानोत्पत्ति करके वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध कर दिया कि संतान की उत्पत्ति के लिए माता-पिता का संयोग होना आवश्यक नहीं है ।

३. महर्षि के समय तथा दुर्भाग्य से अभी भी कहीं-कहीं स्कूलों में पढ़ाया जाता है कि आर्य भारत में बाहर से आक्रांता के रूप में आये तथा लड़कर द्रविड़ों को दक्षिण में धकेल दिया। महर्षि ने सर्वप्रथम घोषणा की कि किसी भी संस्कृत ग्रन्थ में नहीं लिखा है कि आर्य बाहर से आए हैं । आर्य भारत मूल के निवासी है तथा भारत देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है, अब तो इतिहासज्ञ भी मानने लगे है कि आर्य इसी देश के मूल निवासी हैं ।

४. वेदों के विषय में भी तब ग़लत धारणा थी कि वेद सामान्य जंगली लोगों की रचनाएँ हैं, उनमें संसार के लोगों का इतिहास तथा नाम है । महर्षि ने इसे उलटते हुए साहस पूर्वक कहा कि वेद सभी सत्य विद्याओं की पुस्तक है, जिनका प्रादुर्भाव सृष्टि के आरम्भ में ही हुआ था। यह तथ्य भी आज सर्वमान्य हो चुका ।

५. महर्षि ने यह भी घोषणा की थी कि यदि उन्हें साधन उपलब्ध हो जाय तो वे विमान बनाकर उड़ा सकते हैं । जिसने विज्ञान तो क्या अन्य आधुनिक विषयों की शिक्षा भी प्राप्त न की हो उसकी यह घोषणा आश्चर्य से कम न थी। वह भी उस समय जब कि पाश्चात्य जगत् विमान का नाम तक नहीं जानता था। उस सबके द्वारा स्वतः सिद्ध है कि महर्षि दयानन्द दिव्य-दृष्टि सम्पन्न ऋषि थे उनकी यही दिव्य-दृष्टि शिवरात्रि की रात्रि को शिव मंदिर में प्रकट हुई थी। •

ऋषि बोध दिवस

धनवन्ती रामचरण, एम.एस.के, आर्य रत्न

हर साल शिवरात्रि आती है, जाती है। शिवरात्रि के दिन महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को बोध हुआ । ऋषि जी के बोध से हम क्या तात्पर्य निकालते हैं ? हम को भी बोध होना चाहिए, बोध कैसे होगा ? बोध तब होगा जब हम परम पिता परमात्मा को निराकार समझेंगे। उस सुखकारी तथा कल्याणकारी की खोज भी सभी करते हैं, पर कल्याण या कल्याणकारी कौन है ? सुख और सुखकारी कौन है ? इसका विवेक बिरले ही करते हैं। महाभारत काल के पश्चात् उन महामानवों में एक मात्र नाम 'ऋषिवर दयानन्द' का है । चौदह वर्ष की अवस्था में जब मूलशंकर को उनके पिता ने कल्याणकारी शिव का महात्म्य बताकर फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उपासना करने के लिए रात्रि भर जागरण के लिए प्रेरित किया। बोधित किया तो उस किशोर को पिता की आज्ञानुसार शिवरात्रि का व्रत और रात्रि के जागरण के लिए उद्यम करना पड़ा। यह प्रतीत होता है कि 'चौदह विद्याओं – चार वेद, ४ उपवेद, षड्दर्शन, इन वेद वेदांगादि षोडश ग्रन्थों का गुह्य ज्ञान उनकी हृदय-गुह्य में निगूढ़ था। और उसके प्रकाश के लिए मन में अन्तर्निहित दृढ़ संकल्प था, जिसके आधार पर चौदह वर्षीय मूलशंकर शिव के बताये गये गुणों के विपरीत देख अपने पिता से तर्क कर बैठे । वेद मन्त्र है –

'यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः'

ऋ० ५/८८/१८

जो जागता है उसको यह सोम - शान्तिदायक परमात्मा कहता है – मैं तुम्हारा हूँ, मित्रता के स्थान में हूँ, मैं तेरा मित्र हूँ। शिव के महात्म्य के विपरीत घटना ने मूलशंकर को व्रत तोड़ने को प्रेरित किया । तदनुसार मूलशंकर रात्रि के जागरण को त्याग कर अपनी आत्मा के जागरण के लिए सत्य परमात्मा के दर्शन के लिए, सच्चे शिव की खोज के लिए पिता की आज्ञा लेकर वहाँ से उठ खड़े हुए।

महर्षि दयानन्द का यह जागरण मानव जाति का जागरण था। मोह-माया के बन्धन से नाता तोड़कर, माता-पिता के स्नेह, वात्सल्य को छोड़कर, धन, वैभव के सुख को भुलाकर कल्याणकारी शिव का अन्वेषण उसको पाने की उत्कंठा थी। महर्षि के चौदह वर्षीय मानस ने अपने देश की जर्जर अवस्था का पूर्णतया ज्ञान कर लिया था।

मूलशंकर गृह त्याग कर निकल पड़े और उन्होंने गिरि-कंदराओं में घूमते हुए, कष्टों को सहते हुए वेद-वेदांगों का अध्ययन करने के पश्चात् यह तथ्य सामने रखा कि सबका पूज्य, उपास्य वह 'ओ३म्' शब्द वाच्य परमात्मा ही है। उसी नियम के आधार पर शिव, रुद्र, महेश, शंकर, ब्रह्म आदि अनेक नाम हैं। वे अनन्त नाम परमात्मा के ही हैं। और वे सभी नाम परमात्मा वाच्य 'ओ३म्' पद में ही सन्निहित हैं। जो परमात्मा के अतिरिक्त किसी का वाचक नहीं है। उसी ओ३म् की उपासना केलिए महर्षि ने पाखण्ड-खण्डिनी पताका को लहराया, जिस पताका के मध्य 'ओ३म्' यह शब्द अंकित था।

परमात्मा के नामों की व्याख्या करते हुए सर्वप्रथम महर्षि ने ओ३म् शब्द की व्याख्या की ओर लिखा 'यह ओ३म् शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है' ओ३म् तो केवल परमात्मा का ही नाम है। शिव आदि शब्दों को छोड़ महर्षि ने ओ३म् की उपासना का फल बताकर अपना एक नया मन्तव्य स्थापित नहीं किया, अपितु वेद तथा वेदाङ्गादि शास्त्रों के तथ्य को स्थापित किया है । ओ३म् पद् वाच्य परमात्मा की उपासना को सभी उपनिषदें, स्मृतियाँ, दर्शन, निरुक्तादि शास्त्र कहते हैं । तात्पर्य हुआ जो सब से महान् हैं, वह निराकार है, वह ही पूर्ण तथा शिव - सुखकारी हो सकता है। अतः यह लेख प्रस्तुत करते हुए माँग करती हूँ कि चलें हम भी सच्चे शिव की खोज करें किसी प्रकार के भ्रम में न पड़ें । ऋषि बोध के लिए शुभ कामनाएँ । •

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेअमृतोपमम् - गीता

(जो-जो विद्या और धर्म प्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश्य होते हैं) ***महर्षि दयानन्द***

डॉ० बीरसेन जागासिंह

संसार के अनेकों देशों में जी रहे समस्त आर्य परिवारों के लिए वास्तव में महर्षि दयानन्द जयन्ती के साथ-साथ ऋषि बोधोत्सव भी अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसर होते हैं, जिन्हें वे देश-काल-परिस्थिति के अनुसार उत्सव स्वरूप मनाते हैं।

महाभारत के विनाशकारी महायुद्धोपरान्त धर्म की विजय तो हुई, परन्तु युद्ध के पश्चात् आर्यावर्त्त और आर्यों के अस्तित्व की जड़ें भीतर तक ऐसे चरमरा गईं कि शताब्दियों बाद आज २०१५ में भी न देश सम्भल पाया और न देशवासी ! वीरों, विद्वानों, वैज्ञानिकों, धर्माचार्यों, धन-वैभव, कुशल राजनेताओं आदि के लाले पड़ गए। दिशा-विहीन देश और देशवासी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। अरब, तुर्क, अफ़गान, मंगोल, फ्रेंच, पुर्तगाली और अंग्रेज़ों ने सोने की चिड़िया आर्यावर्त्त को खूब लूटा और कुड़ुक मूर्गी बनाकर छोड़ दिया । अल्पज्ञानी-अंधे भारत रूपी हाथी को समग्रता के साथ न जान-पहचान पाए । अतः उसे मात्र आंशिक सच स्वरूप अपूर्ण-अधूरे उपचार और समस्याओं के निदान के झूठे उपाय सुझाते रहे । यद्यपि पाँच-छः सौ साल पहले लोकनायक महाकवि तुलसीदास ने संकेत किया था : 'पराधीन सुख सपनेहु नाही।' तथापि 'सुराज', 'स्वराज', 'स्वाधीन' की चर्चा महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में सप्रमाण की है । उन्होंने इंडिया को भारत बनाने कि लिए वेदों को आधार ग्रंथ बताया। महर्षि से पहले आधुनिक युग में किसी भी भारतीय ने भारत और भारतीयों को भारत की दुर्दशा के संपूर्ण परिदृश्य से अवगत कराने में सफलता प्राप्त नहीं की थी। एक ऐसे महर्षि दयानन्द की जयन्ती दैवयोग से होती है । युग द्रष्टा महर्षि ने परख लिया था कि बावन उपनिवेशों के मालिक महाशक्ति अंग्रेज़ों को भोथर और ज़ंग लगे युगों से सुस्त पड़े हथियारों से जीता नहीं जा सकता था।

प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध - १८५७ के हारे हुओं को प्रोत्साहित करना था, उन्हें सशक्त करना था, उनकी हीन भावनाओं को आत्माभिमान में परिवर्तित करना था, उन्हें वेदों का पुनर्स्मरण करवाना था, भ्रमों और अंधविश्वासों को समाप्त करना था, ज्ञान-विज्ञान, गणित, खगोल, आत्म-ज्ञान आदि से संसार का मार्गदर्शन करने वाले आर्यावर्त्त के प्राचीन गौरवों की पुनर्स्थापना करनी थी। पहले तो महर्षि ने भारतीयों के सशक्तिकरण की योजना बनाई थी। पाखंड-खंडिनी-पताका गाड़ कर परम्परावादियों को चुनौती दी, शास्त्रार्थ में उन्हें हराया भी। सत्यार्थप्रकाश जैसा कालजयी ग्रंथ लिखा..... कि उनकी हत्या का षड्यन्त्र सफल हो गया! उनके स्थापित आर्यसमाज (बुंबई-१८७५) द्वारा आज उनके दिव्य ज्ञान का प्रचार-प्रसार हो रहा है। गुजरात राज्य में सन् १८२४ में जन्मे महर्षि दयानंद मात्र ५९ वर्षों तक हमारे साथ रहे - (निर्वाण-सन् १८८३)। यदि वे दीर्घायु होते तो कब के इंडिया भारत बन गया होता। एक वैसी पुण्यात्मा की जयन्ती मात्र आर्य समाजियों को ही नहीं, अपितु प्रत्येक भारत वंशी को मनानी चाहिए थी ।

वर्षों पहले मैंने 'Makers of Civilisations' शीर्षक पुस्तक में विश्वभर के ऐसे महापुरुषों की जीवनियों और उनके अपूर्ण कार्यों की जानकारियाँ प्राप्त की थीं, जिनसे संसार ने लाभ कमाया था। वैज्ञानिक ईसाक न्यूटन एक थे उनमें से, जिन्होंने अपनी गुरुत्वाकर्षण - gravity की थियोरी द्वारा समझया था कि पेड़ से सेब गिरकर हवा में उड़ नहीं जाता, क्योंकि पृथ्वी सेब से बड़ी है । अतः वह सेब को अपनी गुरुता के कारण अपनी ओर आकर्षित करती है! पृथ्वी और ग्रह इसी कारण अंतरिक्ष में न उड़कर सूर्य के आकर्षण से बँधे रहते हैं! सेबों को पेड़ों से गिरते युगों से दुनिया ने देखा, परन्तु एक न्यूटन को ही सत्य के दर्शन हुए । ठीक उसी प्रकार आर्यों के निर्गुण-निराकार परमात्मा के सगुण-साकार रूपों में परिवर्तित हुए युग बीत गए - मूर्ति पूजा और शिवलिंग ने ईश्वर का स्थान ले लिया, शिवरात्रि की रात को लोग सो कर जाग्रण के नाम पर व्यतीत करने लगे, शिवलिंगों पर कीड़े-मकोड़े और चूहे ऊधम मचाने लगे, जिन्हें शिवलिंग अर्थात् शिव जी अपने से उनको खदेड़ने में असमर्थ थे। ये तथ्य मात्र बालक मूलशंकर को

दिखाए दिए - जैसे पेड़ से गिरते सेब न्यूटन को दिखाई दिया था। बालक मूलशंकर के प्रश्नों के उत्तर किसी के पास नहीं थे। समय के साथ वे स्वयं सच्चे शिव की खोज में निकल पड़े थे और उन्होंने दूध का दूध, पानी का पानी कर दिखाया था। आदि और ईश्वरीय ज्ञान से परिपूर्ण ग्रंथ - वेदों को उन्होंने वास्तविक आर्यों का मात्र धर्मग्रंथ प्रमाणित किया। शेष अनार्ष ग्रंथों को वेदों और उपनिषदों के आधार पर अप्रामाणिक साबित कर दिया । अखंड ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द ने आर्य वंशज हिन्दुओं को भ्रम और अंधविश्वास के दल-दल से निकालने का प्रयत्न किया । करोड़ों भारत वंशियों ने उनपर विश्वास किया और सत्य का प्रकाश पाया । भारत के बाहर भी जहाँ भारतीय वंशज जीते हैं, वहाँ अवश्य आर्य समाज है। महर्षि जी को स्वयं सत्य का बोध हुआ और उन्होंने संसार को प्रकाशित किया । आँखें तो होती हैं, परन्तु प्राणी उनका सदुपयोग नहीं कर पाते ! युग-वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने कहा भी है कि मनुष्य अपने मस्तिष्क का मात्र एक बीसवाँ हिस्सा काम में लाता है। शेष यदि सक्रिय हो जाता तो संसार से भ्रम, अंधविश्वास, असत्यता, अंधकार, ढोंग, पाश्विकता, हिंसा आदि दुष्प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जातीं और धरा ही स्वर्ग बन जाती ।

विज्ञान के पास भी दिमाग़ को पूर्ण सक्रिय करने की टेकनीक पश्चिम के पास अब तक विकसित नहीं हो

पाया है । पूरब में भारतीय मानते हैं कि दैव योग से, ईश्वर की कृपा से और पूर्ण परिश्रम के उपरान्त किसी-किसी का मस्तिष्क थोड़ा अधिक सक्रिय हो जाता है। तभी प्राणी को उन बातों का बोध हो जाता है, जिनको देख-सुनकर भी करोड़ों लोग तटस्थ रहते हैं । महर्षि दयानन्द के साथ भी यही हुआ। मानवता के कल्याण और भारत और आर्यों के कल्याण और उद्धार के लिए वे दिव्य चक्षुओं से सम्पन्न हुए । उनके प्रति अपनी कृतज्ञता और भक्ति-श्रद्धा व्यक्त करने के लिए शब्दों में सामर्थ्य नहीं है । महर्षि ने तन्द्रावस्था से आर्य वंशजों को झकझोर कर जगाया और सच्चे अर्थों में वैदिक धर्म से अवगत करवाया । एक मार्के की बात और है – उनसे पहले महावीर, जैन, गौतम बुद्ध, कबीर आदि ने समाज की बिगड़ी अवस्था, धर्माडम्बर, जटिल धार्मिक गुत्थियों को सुलझा न पाने के कारण भ्रष्ट वैदिक कर्मकाण्डों को यथावत छोड़कर अलग से, जैन, बौद्ध, कबीरपंथ आदि नामों से समानान्तर रूप से अपना मत चलाया। जबकि महर्षि ने विद्वत्तापूर्वक वैदिक धर्म के भीतर रहकर ही आर्यसमाज की स्थापना की । महर्षि की अन्य विशेषताओं में से यह सर्वप्रमुख विशेषता है। बोध प्राप्त कोई महापुरुष ही युगों बाद ऐसा कर पाता है।

महर्षि के निर्वाणोपरान्त उनके सर्वोत्तम सिद्धान्त तो आर्यसमाज के दस नियम स्वरूप यथावत है, परन्तु उनके अनुयायियों का व्यवहार-पक्ष थोड़ा शिथिल दृष्टिगोचर होता है। मोरिशस भर में कट्टर आर्य समाजी फैले हुए हैं, जिनपर स्वयं महर्षि को गौरव और गर्व होगा। सामाजिक सेवा-कार्य, धर्म प्रचार और भ्रमों और अंधविश्वासों को दूर करने के कार्यों में आर्य सभा मोरिशस ही सर्वाधिक सक्रिय एवं अग्रगण्य है । कुछ वर्षों से मोरिशस भर में एक परिवर्तन देखा जा रहा है। जो साधारण व्यक्ति आर्यसमाज का सदस्य है, वही कावेड़ी भी उठा रहा है, उसी के घर में दुर्गा पूजा हो रही है, वही शिवरात्रि के दिन गंगा तालाब पैदल जा रहा है और शिवलिंग पर जल चढ़ा रहा है !

ऐसा क्यों और कैसे हो रहा है ? देख-सुन-समझ कर इस तथ्य को नकारना ठीक नहीं होगा । पं० वासुदेव विष्णुदयाल और आर्य नेता पं० मोहनलाल मोहित जैसे वयोवृद्ध ज्योतिर्स्तम्भ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के दिव्याकर्षण से अनगिनत भूले-भटकों ने जीवन में प्रकाश पाया। ऐसे आदर्श एवं उदाहरणीय धार्मिक-सामाजिक नेताओं की कमी बहुत खलती है। भारत में आज भी आर्य समाजी उच्च कोटि के विद्वान् संन्यासी-प्रचारक-स्वामी हैं। आमंत्रित करके उनसे प्रचार-कार्य तीव्र किया जाय, ताकि सर्वसाधारण आर्य समाजी तक महर्षि का संदेश पहुँच सके अन्यथा ऐसा भान नहीं होना चाहिए कि आज सम्पन्न और पढ़े-लिखे लोगों भर का समाज है, आर्य समाज ।

एक आर्यसमाजी होने के नाते मुझे लगता है कि ईश्वर की कृपा से स्वामी दयानन्द जैसे युग-पुरुष का जन्म भारत भूमि में हमारे उद्धार के लिए हुआ । उनको बोध भी हुआ कि सच्चे परमात्मा को भारतीय लोग क्यों जान-पहचान कर भारत का और अपना कल्याण नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने सही रास्ता बताया जिससे आज २०१५ में भी मोरिशस के आर्य वंशज हिन्दू अवगत नहीं हैं ! क्यों ? सही कारणों का पता लगाकर उचित कदम उठाना होगा। झूठ और आडम्बर चाहे लाखों व्यय करके समारोह पूर्वक देश की आम जनता को भ्रमित करके अंधविश्वास फैलाते रहें – सच्चे शिव की अवहेलना होती रहे, परन्तु वेदों के ईश्वरीय ज्ञान के समक्ष सब झूठ और आडम्बर तथा अंधविश्वास निस्तेज होकर समाप्त हो जाएँगे। ऐसा मेरा आत्मविश्वास है । •

महर्षि दयानन्द का गत्यात्मक दृष्टिकोण (दर्शन)

अनुवादक : प्रह्लाद रामशरण

'दयानन्द सरस्वती का जीवन और विचार' जी.टी.एफ. जोर्डन का ग्रन्थ है। यह ३६८ पृष्ठों का है, जिसका प्रकाशन १९७८ में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से हुआ है। इस में बारह सारगर्भित अध्याय हैं । इसी ग्रन्थ के बारहवें अध्याय के प्रथम अंश का हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। जोर्डन महोदय ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी, कान्बेरा में दक्षिणी एशियायी सभ्यता के रीडर रहे। वे संस्कृत हिन्दी तथा हिन्दू के परंपरागत संस्कृति, भारत से आधुनिक इतिहास के साथ-साथ उन्नीसवीं सदी के भारतीय संस्कृति के विशेष भी रहे। महर्षि दयानन्द के जीवन एवं कृतित्व पर उन्होंने इतनी गहराई से अनुसंधानात्मक अध्ययन करके जो निष्कर्ष निकाला है, उसे पढ़कर आनन्द के साथ-साथ आश्चर्य भी होता है। उनके संदर्भ ग्रन्थों की सूची इतनी लम्बी है कि उसे देखकर विश्वास नहीं होता कि महर्षि दयानन्द पर एक अंग्रेज़ विद्वान् इतने ग्रन्थों का अध्ययन कर सकता है? महर्षि जी से संबंधित इतनी संस्थाओं एवं आर्यसमाज के इतने प्रकाण्ड विद्वानों के संपर्क में आकर उपर्युक्त ग्रन्थ लिख सकता है! यही नहीं, उन्होंने महर्षि दयानन्द के समग्र जीवन के प्रत्येक पहलू (अवस्था) में उनके दार्शनिक चिंतन के क्रमिक विकास को मापने का प्रयास किया, जो अपने में बेजोड़ है। एक अंग्रेज़ अनुसंधाता होने के नाते उन्होंने भावुकता रहित होकर महर्षि दयानन्द के कार्यों का संश्लेषण-विश्लेषण किया है, जिसे पढ़कर स्वामी जी के प्रति भावुकता से ओत-प्रोत विद्वान् जोर्डन के अध्ययन के प्रति अपनी असहमति जता सकता है। जोर्डन महोदय ने बड़ी खूबी के साथ सत्यार्थप्रकाश के प्रथम अशुद्ध संस्करण और द्वितीय शुद्ध संस्करणों की विषय वस्तुओं पर तथ्यात्मक तुलना प्रस्तुत करके ऐसा अद्‌भुत कार्य किया है, जो अब तक के आर्यसमाज के विद्वानों द्वारा नहीं हो पाया है।'

(क) धर्मतत्वज्ञः (ब्रह्म विज्ञानी) ईश्वर और वेद

जब युवा दयानन्द (मूलशंकर) ने अपने घर का परित्याग किया, तब ईश्वर के प्रति उनकी संकल्पना शायद अनिश्चित (अस्पष्ट) रही हो । तब इसकी दो निश्चित विशेषता रही हो । उसकी शैव पूर्व पीठिका ने उनके मस्तिष्क में एक वैयक्तिक ईश्वर जो शिव के विभिन्न रूपों में प्रतिष्ठापित हो चुका था। इसीलिए वैष्ण पुराण के प्रति उनके मन में घृणा घर कर गयी थी। किन्तु संन्यासी बनते ही उनके अद्वैत अध्ययन उन्हें ब्रह्म और आत्मा की पहचान के लिए विवश कर दिया। किन्तु उनकी यह जिज्ञासा गहरी नहीं थी। यह इसलिए कि संस्कृत का सीमित ज्ञान उन्हें मूलपाठ के प्रारंभिक ज्ञान में बाँध रखा था। उनकी ऐहिक अभिरुचि और उनके सिद्धान्त तथा व्यवहार ने उनके अध्ययन को रोक रखा था। अतः वे तुरन्त योग शिक्षा का अध्ययन करने लगे और उनके अगले दस वर्ष इसी परिभ्रमण में बीते तब उनका चिंतन भावावेश नहीं था, बल्कि कार्य-प्रणाली में नैपुण्य प्राप्त करना था, जो उनके आध्यात्मिक संपादन में सहायक हो सके। ऐसा लगता है कि उनकी यह तीर्थयात्रा आनंददायक उद्देश्य से बच निकलने का था, किन्तु इस लम्बे मार्ग पर योग के कठोर अभ्यास ने उन्हें ऐसा मानव बना दिया, जिसके कारण उनके शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का अद्‌भुत रूप से संवर्धन हुआ ।

मथुरा में स्वामी दयानन्द जब विरजानन्द के छात्र रहे, तब उनका एकेश्वरवाद सामने आया, जिसमें उनके दृढ़ शैव धर्म की झलक थी। ऐसा इसलिए हुआ कि कृष्ण के शहर में उनके सशक्त शैव मत का वैष्णव वातावरण से टकराहट हुई। आने वाले वर्षों में इस एकेश्वरवाद ने धीरे-धीरे उनके दिमाग़ से समस्त पौराणिक ग्रन्थों तथा शैव तत्वों को निकाल दिया और उसे एकेश्वरवाद से जोड़ दिया। तभी यह जताया गया कि सत-चित-आनन्द ईश्वर का उपर्युक्त नाम है। फिर भी यह कोई वैयक्तिक अस्तित्व नहीं, किन्तु यह परमेश्वर, परमात्मा का दूसरा नाम रहा। इस प्रकार से द्वैत और अद्वैत के बीच एक समझौता तय किया गया। परन्तु तब भी स्वामी जी ब्रह्म के उस मूल सैद्धान्तिक पहचान में विश्वास करते थे। जिसमें ब्रह्म और आत्मा तथा विश्व की मूलभूत अवास्तविकता निहित थी। इन दोनों सिद्धांतों को स्वामी जी ने अपने दोआब के प्रवासकाल में मन से निकाल दिया और पुनः एकेश्वखाद के मूलभूत सिद्धांत में विश्वास किया। ईश्वर एक इन्द्रियातीत तत्व है, विश्व और आत्मा से परे, समस्त प्राणी के जन्मदाता और अपनी सर्वव्यापी शक्ति से सृष्टिकर्ता।

देवेन्द्रनाथ के ब्रह्मो धर्म के उच्च एकेश्वरखाद स्वामी दयानन्द के सहायक बने और उनका द्वैत संबंधी विवरण की स्पष्टता उनके आदिम सत्यार्थप्रकाश में पायी जाती है। उन्होंने महर्षि जी के सूत्र को अपनाया जो ईश्वर को एक साथ सगुण

और निर्गुण में विभाजित किया था, किन्तु गुण का प्राथमिक अर्थ स्वच्छ लक्षण और दूसरा सीमितता थी। इस तरह से एकेश्वरवाद को बिलोपन करने में कुछ समय लगने का चिह्न मिलता है। तब स्वामी दयानन्द के सामने सबसे अहम सैद्धान्तिक कठिनाई आई। ईश्वर और निरीश्वर के बीच का सम्बन्ध जो ईश्वर की परिशुद्धता पर आँच न आने दे। यह समस्या जटिल इसलिए थी, क्योंकि स्वामी जी तब यह मानते थे कि ब्रह्माण्ड और जीव की आदि सृष्टि, ईश्वर की असीमित शक्ति से हुई है। यह सिद्धान्त भी संभवतः देवेन्द्रनाथ से प्रभावित था। यह असमानता कि विश्व की उत्पत्ति ईश्वर की शक्ति से हुई, ईश्वर और सृष्टि के संबंध को भ्रमित करती है। अतः स्वामी दयानन्द ने पुराने सिद्धान्त भेदाभेद के ज़रिये इस सूक्ष्म बिन्दु को सुलझा अर्थात् ईश्वर और उनकी अंत शक्ति के बीच का सम्बन्ध । इस प्रकार से ईश्वर की आदि शक्ति उनसे अलग नहीं है और इसीलिए ईश्वर, ब्रह्म के असली लौकिक कारण हैं। किन्तु साथ-साथ दोनों में अंतर है, इसीलिए कोई यह नहीं कह सकता कि परमात्मा ने स्वयं को ब्रह्माण्ड में परिवर्तित किया है ।

कृश्चन मिश्नरियों के साथ वाद-विवाद करके स्वामी दयानन्द ने अनुभव किया कि इन समस्याओं का समाधान असंतोषजनक है। अतः जब उन्होंने सांख्य और न्याय वैशेषिक का अध्ययन किया तब ऐसे तत्वों को आविष्कृत किया, जिसके ज़रिये त्रैतवाद सिद्धान्त को अंतिम रूप दिया जा सका ; अर्थात् ब्रह्म, प्रकृति है और जीव भी ईश्वर की तरह सह-अनादि-अनन्त है। इस तरह से वह उत्पादन संबंधी सृष्टि की पेचीदा समस्या एकदम सुलझ गयी । किन्तु तब भी स्वामी जी के मतानुसार उनके विकासात्मक प्रक्रिया पूर्ण रूप से ईश्वर पर आधारित थी।

ईश्वर की संकल्पना संबंधी विचार स्वामी दयानन्द के क्रमिक बौद्धिक विकास को स्पष्ट रूप से बताता है कि वे मूलरूप से एकेश्वरवाद पर विश्वास करते थे। जिसे उन्होंने अपने यौवनकाल से दायरूप में पाया थ। फिर भी अद्वैतवाद ने उनके विचार को कुछ समय तक पराभूत किया, किन्तु उसकी छाप गहरी नहीं थी और धीरे-धीरे स्वामी जी ने अपने अद्वैतवादी विचार को त्याग दिया। इसके लिए तीन शास्वत सूत्रों (शक्तियों) का प्रभाव इस प्रक्रिया में कार्यरत थी। स्वामी जी का कृश्चन मिशनिरियों के साथ वार्तालाप, देवेन्द्रनाथ के ब्रह्मो धर्म की संकल्पना और सांख्य और न्याय-वैशेषिक का अध्ययन, इन तीनों मूलभूत पदार्थों को सह-अनादि अनन्त और न्याय वैशेषिक आदि ने सृष्टि की प्रक्रिया में ईश्वर के कर्तव्य का निर्धारण किया था।

स्वामी जी ने अपने विचार को उन प्रारम्भिक शक्तियों पर केंद्रित किया और ईश्वर के प्रति उस सिद्धान्त को विकसित किया जिसके तहत ईश्वर के प्रति छोटी सी भी त्रुटि न हो, फिर भी जिससे ईश्वर का व्यक्तित्व बना रहे। इसीलिए उन्होंने सत-चित आनन्द जैसे साधारण सिद्धान्त को अपनाया। उन्होंने सांख्य की संकल्पना को दूर किया और क्यों वे लगातार ब्रह्मांड और जीव के संबंध में किसी भी ऐतिहासिक ईश्वरीय हस्तक्षेप का विरोध किया । फिर भी यह नकरात्मक प्रक्रिया, जिसके ज़रिये ईश्वर के समस्त संभवी दोषों से अलग करते हुए उन्होंने अपनी अंतिम विचार-धारा के अनुसार ईश्वरवाद और दैववाद के बीच समझौता स्थापित किया। ईश्वर ब्रह्मांड में व्याप्त है, उसे संभाल रखा है और कर्मानुसार फल देता है, किन्तु इन कार्यों को संपन्न करते समय वह अपने को अलग रखता है, जैसे ब्रह्मांड के शास्वत ईश्वरीय निर्माता के भौतिक सिद्धांत और प्रतिफलन के नेतृत्व का मूल्य निर्धारण। इसमें संदेह नहीं कि स्वामी जी के निज के धर्मानुराग में और उनके श्रद्धामय कार्यों में ईश्वर और उनके सामीप्य बड़ा प्रिय रहा हो। किन्तु स्वामी दयानन्द अपनी संघटन प्रक्रिया में कामयाब नहीं हुए, क्योंकि वे अपने निज के सामीप्य (एक प्रिय और सूसबँध ईश्वर) को एक ढाँचे में रखकर एक समवयात्मक विलयन में अपने आरम्भिक सिद्धान्त को गहराई से समिशण कर सके।

स्वामी दयानन्द का धर्म विज्ञान संबंध एक विशेष पहलू रहा। यद्यपि वे इस विचार से अविभूत थे और एक पूर्ण और अपरिमित तथा स्वतन्त्र देवत्व (ईश्वर) में विश्वास करते थे। अन्त में वे उसी ईश्वर पर आकर रुक जाते थे। जैसे एक तरह से इस संसार को उसकी आवश्यकता थी जिस तरह से विश्व को उसकी अपेक्षा थी। ईश्वर का विश्व के साथ केवल एक क्षेत्र है, जिसमें वे अपनी शक्तियों और सर्वशक्तिमान, करुण और न्याय आदि गुणों को प्रकृति के रूप में पूरा कर सकते थे। स्वामी जी के मतानुसार उत्पत्ति, परीक्षण और मोक्ष, ईश्वर का स्वाभाविक कार्य रहा है, ठीक वैसा ही जैसे आँखों का स्वाभाविक कार्य है देखना।

अपने ईश्वरीय विषय चिंतन में स्वामी दयानन्द को कठिनाई का सामना करना पड़ा। यह उनके समझ के परे की बात थी, क्योंकि उन्होंने धर्म की व्याख्या करते समय, उसमें कथा और प्रतीक के मूल अर्थ के भेद को नहीं पकड़ सके। उनकी दृष्टि में ब्रह्म-विज्ञान के क्षेत्र में केवल बुद्धि सम्पन्नता की ही मान्यता थी। यहाँ तर्क संगत, उन्हें ब्रह्मविज्ञान के चिंतन की गहराई में जाने से रोक लिया था, जैसे रामानुज और माधव आदि अन्य हिन्दू दार्शनिक।

स्वामी दयानन्द की दृष्टि में ईश्वर के रहस्यों को थाहना (मापना) ईश्वर के शुद्ध असीमितता का अतिक्रमण करना है। इसी तर्कवाद ने उनके मन में एक अस्पष्ट देववाद की ओर आकर्षित किया। स्वामी दयानन्द दैवी तत्वश के वैज्ञानिक नहीं थे। अगर देखा जाए तो उनकी प्राथमिक रुचि ईश्वर को जानने की जिज्ञासा कभी नहीं रही किन्तु मानव की प्रतिस्पर्धा की ओर रहा। उन्होंने अपने जीवन का प्रथम काल मोक्ष की खोज में बिताया और दूसरे काल में उन्होंने व्यक्ति रूपी हिन्दू और हिन्द समाज के पुनरुज्जीवन को सुपुर्द कर दिया था।

वेद के प्रति स्वामी दयानन्द की संकल्पना का विकास एक लम्बे और धीमी प्रक्रिया से गुज़र कर उनके नाम के साथ संलग्न रहा। कठियावादी शैव्य मत के परम्परागत रूप से जुड़े रहने के कारण उन्हें इस बात का गर्व था कि हिन्दू के अति प्राचीन पहलू जो धर्म शास्त्र के वैदिक कर्मकाण्ड से बँधे थे, उसी को उन्होंने आधार शिला बनाकर अपने युवाकाल में यजुर्वेद का कंठाग्रह किया था। किन्तु अपने वयस्कावस्था के बीस वर्षों तक वेद में उनकी रुचि की कोई खाल वजह नहीं थी।

यह कार्य विरजानन्द का था जिन्होंने दयानन्द के विचार को हिन्दुत्व के प्राचीन स्रोत की ओर आकर्षित किया। उन्होंने दयानन्द को बताया कि शुद्ध हिन्दुत्व का वास्तविक स्रोत प्राचीन ऋषियों की एकमात्र कृतियों में पाया जाता है। लेकिन ऐसा लगता है कि गुरु विरजानन्द को ठीक तरह से पता नहीं था कि वे कौन से आर्ष ग्रन्थ थे । अतः गुरु विरजानन्द को छोड़ने के सात वर्षों में दयानन्द ने समस्त हिन्दू ग्रन्थों का अध्ययन किया जो उनके हाथ लगे और धीरे-धीरे बड़ी दृढ़ता के साथ उन्होंने तांत्रिक और पुराणों के साथ- साथ महाभारत, उपनिषद् और मनुस्मृति को अलग करने का निश्चय किया। आखिर १८७० में उन्होंने ब्राह्माण ग्रन्थों का अध्ययन किया और तब ऐलान किया कि ईश्वर आदि का प्रकटन केवल संहिताओं में पाया जाता है जो ऋग, यर्जु, साम और अथर्व में समाहित है ।

इस तरह से स्वामी दयानन्द अपने गुरु विरजानन्द के प्रश्नों के उत्तर में उनसे आगे निकल गये। उन्होंने गुरु विरजानन्द द्वारा सांकेतिक ग्रन्थों को पा लिया और चार संहिताओं के ज़रिये ईश्वर के प्रकटन को जो अन्य ऋषियों द्वारा कृत था, उसके प्रति एक मूलभूत विभेदीकरण किया। उन्होंने अन्य ऋषियों द्वारा रचित अन्य धार्मिक ग्रन्थों को केवल भिन्न प्रामाणिक माना। इन सबके बावजूद उनको इस बात की ठीक तरह से जानकारी नहीं थी कि वास्तव में वेदों में क्या है और किस तरह से उनमें ईश्वर का संदेश प्रकट हुआ है ।

स्वामी दयानन्द ने इन प्रश्नों की समस्याओं का समाधान कलकत्ता में पाया। ईश्वर के 'प्रकटन' का प्रश्न राममोहन राय के समय से बंगाल के सुधारकों द्वारा विचारित होता रहा। उन्होंने इस विचार को एक विस्तृत पहलू से देखा था, क्योंकि उन्हें कृश्चन और इस्लाम आदि धार्मिक ग्रन्थों से चुनौती दी जा रही थी। उन विचारकों के अंतिम निर्णयानुसार (ईश्वर के) अनन्य प्रकरण को त्याग कर यह मानना आवश्यक था कि विभिन्न धर्मों के परमपावन ग्रन्थों के अनुपूरक पहलू के अनुसार एक सार्वभौतिक बुद्धि संगत धर्म है। अतः इस आधारशिला पर उनके प्रायोगिक विभिन्न दर्शन ग्रहण केशवचन्द ने उच्च शिखर तक पहुँचाया था। किन्तु उन्नीसवीं शती के छठे दशक में वह सार्वभौतिक एवं विभिन्न धर्म ग्रहण उपागम को एक नव निमित्त आंदोलन जो हिन्दू स्वाभिमान और स्वदेशीवाद का पक्षधर था, के ज़रिये ज़ोरदार चुनौती दी जा रही थी। उसकी अग्रणी ब्रह्म धर्म समाज कर रहा था। इस आंदोलनकारियों के मतानुसार हिन्दुत्व केवल अन्य भाई चारे विश्व धर्मों के समान नहीं था, किन्तु वह सबसे सर्वापरि धर्म था।

उपर्युक्त अवधारणाओं के ये चिंतन जो कलकता में स्वामी जी के सामने आए, उससे उन्होंने अपने निज के वैदिक सिद्धांत रूपी ईश्वर प्रकटन संकल्पना को दो अलग-अलग सिद्धांतों से प्रतिपादित किया। उन्होंने इस दृष्टि से सत्य धर्म के आगमन सीधे ईश्वर द्वारा निश्चित रूप से प्रदत्त ग्रन्थ को बताया और इस मत को उस सिद्धांत में समावेश किया जिसमें हिन्दुत्व की वरिष्ठता थी। प्रारम्भिक धर्म ईश्वर द्वारा वेदों में उद्घाटित हुआ है । जो अपने आप में ईश्वरीय प्रकटन को संस्थापित करता है। इसीलिए हिन्दुत्व के सारे पावन ग्रन्थ और उसके साथ-साथ अन्य धर्मों के पवित्र ग्रन्थ जैसे इस्लाम और कृश्चन केवल अमौलिक (अनुपूरक) रचनाएँ थीं, जिनकी उत्पत्ति मानव द्वारा बिना किसी अंतर्भूत सूत्र से हुआ था। स्वामी दयानन्द इस बात पर बल देते थे कि ईश्वर प्रकटन संबंधी तत्व बिल्कुल तर्कसंगत था और इसीलिए उसमें सारी आवश्यकताएँ निहित थीं, जो अन्य सभी धर्मों के वास्विक रूप में तर्क संगत था, और यही मनुष्य का अपरिपूर्ण कार्य रहा।

इस प्रकार से ईश्वर प्रकटन का विचार हिन्दुत्व की परंपरा में नहीं पायी जाती । यद्यपि हमेशा से यह माना जाता रहा है कि तब से प्राचीन ग्रन्थ का कोई विशेष-विश्वस्त सूत्र रहा हो इसीलिए ऋग्वेद से लेकर ब्रह्मसूत्र और भगवद् गीता तक के सभी प्राचीन ग्रन्थों को एक श्रेणी में प्रवृत्त किया गया। इसके अतिरिक्त हिन्दू परम्परा में इन वृहद् संग्रहों को आमतौर पर इस दृष्टि से देखा जाता रहा कि इनके शब्द अंतिम हो ।

परन्तु उन प्रकटनों को एक चलती प्रक्रिया माना जाता रहा, जो इस नवीन युग की बहुत सारी कृतियों में

देखी जाती है जैसे पुराण, तन्त्र और मध्यकालीन भक्तसंत थे। सच्चे धर्म के प्रति स्वामी दयानन्द का सीमित विचार कि एक मात्र धर्म पर आधारित पुस्तक प्रोटेस्टेंट मिशनरियों के प्रचलित विचार से अनुप्राणित था। उन्होंने उनके आधार वाक्य को हमेशा के लिए त्याग दिया और चारों वेदों पर आधारित ईश्वर प्रकटन को मान्यता दे दी। किन्तु वे इससे भी एक कदम आगे बढ़े, जहाँ कोई भी रूढ़िवादी कृश्चन नहीं जा सकता और यह घोषणा की कि वेदों में सम्पूर्ण ज्ञान, आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक और तो और वैज्ञानिक भी पाया जाता है।

स्वामी दयानन्द की यह उदात्त संकल्पना उनके वेद भाष्य में प्रतिस्थापित हुई है और यह ज्ञान वर्धन तथा भावी पीढ़ी की दाय रूप में उनकी सबसे महत्वपूर्ण देन है। उनका भाष्य हिन्दुत्व के पुनरुद्धार में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया है, जैसा कि महर्षि जी चाहते थे। यह उनके बहुत से अनुयायों के लिए एक निर्जीव कीर्तिस्तम्भ बना रहा, जिस पर कभी-कभी कोई अपनी श्रद्धांजलि अर्पण कर देती है। इन सब के बावजूद इस कृति की महत्ता बहुत से लोगों के लिए सर्वोपरि है। यह प्रतीकात्मक रूप में भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक वैभव के साथ-साथ वैदिक स्वर्णयुग की याद दिलाती है और पूर्ण रूप से हिन्दुत्व की महानता और हिन्दू राष्ट्रवाद के आध्यात्मिक तत्व को स्थाई सामग्री प्रदान करती है ।

क्रमशः

<u>सम्पादकीय नोट</u> : ऑस्ट्रेलियन लेखक जोर्डन महोदय की रचना का श्री प्रह्लाद रामशरण जी ने अनुवाद करने का प्रयास किया है । इस अनुवाद में कहीं-कहीं स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है । •

ऋषि बोधोत्सव

भगवन्ती घूरा

हर साल हम शिवरात्रि के अवसर पर ऋषि-बोधोत्सव मनाते हैं। हमारे लिए यह एक चिंतन-मनन और समन्वय करने का अवसर होता है और आर्य जगत् के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जी के आदर्श जीवन से प्रेरित होने का अवसर होता है ।

चौदह साल के मूलशंकर पिता जी के कहने पर शिवरात्रि के जागरण में मंदिर जाने के लिए तैयार हुए, जबकि उन्हें शिव भगवान का दर्शन करने की लालसा थी। लेकिन वहाँ पहुँचने पर सिर्फ़ मूर्ति थी कोई साक्षात्कार नहीं तो मन उचट गया और घर आ गये । मन में ठान लिया कि मूर्ति पूजा निरर्थक है और अब सच्चे शिव की खोज करने की आवश्यकता है।

धार्मिक और सम्पन्न परिवार था उनका और पढ़ाई करने की सुविधा प्राप्त हुई थी। तीव्र-बुद्धि वाले और कुशाग्र-वृत्ति वाले थे तभी तो जीवन के प्रभात काल से ही वैराग्य को अपना लिया और अपने खोज कार्य में आगे बढ़े। घर परिवार को त्याग कर ज्ञान पाने की कोशिश में गुरु के तलाश में चल पड़े । अनततः गुरु विरजानन्द के पास पहुँचे और शिक्षा दीक्षा से निपुण होकर कार्य क्षेत्र में उतरने को तैयार हुए । गुरु के आदेश मानकर देश का उद्धार और मानव मात्र के कल्याण करने का प्रण लिया ।

अतः ऋषि का बोध फलित हुआ। उस बोध रात्रि का बीज रूप ज्ञान आज विश्व भर में आर्यत्व की झलक दृष्टिगोचर है। ज्ञान की चिंगारी जो उस रात में पड़ी थी। आज मशाल बनकर सारे जहान को प्रकाशमान है। आज के प्रगतिशील जीवन का आधार ज्ञान है । ज्ञान है वेद का सार और देव दयानन्द है वेद का पुनः उद्धारक। आज भी यह बोधोत्सव हम मनायें ताकि जागृति बनी रहे और नये पीढ़ी वाले भी इससे जुड़े रहें ।

महान् आत्मा वाले मूलशंकर उभरे और बने देव दयानन्द ।
दयानन्द लेकर वेद का प्रमाण कियो जग का कल्याण ।
धरती माँ परमपिता परमेश्वर और गुरु का रखे मान ।
धन्य है तू दयानन्द - तेरा होता रहे जय जयकार। •

कैलाश यात्रा

विश्वदेव मुनि, वानप्रस्थी

सभी यात्री और खासकर यूरोप्यन लोग जब हिमालय की यात्रा पर जाते हैं तो वे साथ में खाने-पीने, सोने के सामान, टेंट, सुत-बूट, विशेष कपड़े, विस्की, पकाने के लिए 'गैस', दवाइयाँ आदि, बोझ ढोने वाले को किराए पर ले जाते हैं ।

परन्तु जब मूलशंकर बीस वर्ष की उम्र में कैलाश यात्रा के लिए निकले तो खाली हाथ, नंगे पाऊँ सन्यास लेकर कौपीन वस्त्र में अकेला, सुख सुविधा, सब कुछ त्याग कर सच्चे शिव की खोज में निकल पड़े थे।

उनके पिता जी शिवजी की कथा सुनाया करते थे और कहते थे कि उनका साक्षात दर्शन वहाँ होती है। हिमालय की चोटि कैलाश पर । जो कुछ सुनाया गया था उसमें स्वामी दयानन्द जी ने कुछ सत्य नहीं देखा । साधु सन्यासियों से मिले, कहा 'ज्ञान' बटोरे, उदास होकर हिमालय से उतरे । भाग्य से एक सन्यासी मिला, उनके प्यास नहीं बूझा सका तो मथुरा का पता दिया जहाँ उनके प्यास तृप्त हो सकेगी ।

अंततः सत्य का स्रोत ढूढ़ निकाला। कहाँ ? यमुना के किनारे एक डंडी नेत्रहीन विरजानन्द स्वामी की कुटिया में स्वामी दयानन्द को वेद का ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ। गुरु का आदेश स्वीकार कर व्रत लेकर भारत तथा संसार को सत्य का स्वरूप दिखाया और सफल भी हुए । अकेला ! हाँ ! अकेला !! किसी से समझौता नहीं किया, किसी से हीरे मोती, का प्रलोभन से कुछ असर न हुआ राज्य गद्दी को ठुकरा कर धर्म के नाम पर सम्प्रदायों पर सीधा टक्कर लिया अकेला !

परन्तु पाखंडियों ने विदेशी अंग्रेज़ी राज्य से मिलकर चुग़ली से षड़यंत्र रचे, अंत में ज़हर पीला कर मार ही दिया । सत्य की पुजारियों की यही कहानियाँ हैं ।

इस संघर्ष का बीज आर्य समाज की स्थापना में बोया गया है । पर स्वामी श्रद्धानन्द को छोड़ कर कौन माई का लाल हैं? जिसने इस को समझ कर अमल में लाया है ? शिक्षा के क्षेत्र में ऋषि जी ने गुरुकुल की स्थापना की और निर्देश दिया कि विद्यार्थी पूर्णज्ञान प्राप्त करके संस्कारित करके मैदान में उतरे, देश में सत्यासत्य, धर्माधर्म, भक्षाभक्ष आदि से लोगों में सबसे पहले संस्कार डाले तब राज्य में सुख शान्ति का उदय होगा । यह ऋषि जी का प्रयोजन था, जो कि 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' में स्पष्ट लिखा है ।

स्वामी श्रद्धानन्द ही एकमात्र शिष्य थे जिसने इस बीज को प्रफूलित करते करते अपने प्राण की आहुति दे दी। इस में कोई अतिशयोक्ति नहीं । गुरुकुल काँगड़ी एक उदाहरण है ।

आप 'स्वामी श्रद्धानन्द ग्रंथावली' जो कि व्याख्यातकार डा० भवानीलाल भारतीय ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के कार्यों को इकट्ठा किया हैं, पढ़ेंगे तो पता लग जाएगा ।

आज आर्य समाज एक मत बनकर रह गया है, जैसे अन्य मतों की धूम देश में मच रही है। इनके लिए तो पुराणों में कथाएँ भरपूर हैं जिनसे फ़िल्में तथा टी.वी. सिरयल बनते हैं, ये सब Audio-Visual का रिपोर्ट है – ये दो शक्तिशाली माध्यम हैं – पाँच ज्ञानेन्द्रियों का - Audio - कान से, और Visual - आँख से । दिमाग़ में आसानी से बैठ जाता है। हमारा तो कुछ भी नहीं। इस क्षेत्र में हमने आज तक कुछ नहीं बना पाए हैं। यद्यपि हमारे बीच में विद्वानों की कमी नहीं है !

मैं तो सिर्फ़ ऋषि जी की प्रणाली का याद दिला रहा हूँ, उद्घोष कर रहा हूँ । छोटी मुँह बड़ी बात ! महात्मा कबीर जी ने अच्छा कहा -

कबीरा खड़ा बजार में, सबके मनावत् ख़ैर ।
ना किसी से दोस्ती ना किसी से बैर ।।

बलिदान दिया बलि वेदी पर जीवन 'प्रकाश' हँसते-हँसते ।
वेदों का डंका आलम में बजा दिया ऋषि दयनन्द ने ।। •

तीर्थ-यात्रा और यात्री

सोनालाल नेमधारी, आर्य भूषण

तीर्थ-यात्रा शब्द सुनते ही यह विचार आता है कि कोई कहीं जाता है। पवित्र स्थान पर, तीर्थ स्थान हो, मंदिर हो, सागर तट या नदी का किनारा हो । जैसे एक हिन्दू की यात्रा तीर्थ स्थान गंगा, यमुना, त्रिवेणी या कोई पहाड़ी स्थल हो । गुफा हो। प्राकृतिक सुन्दरता हो। पुराने-नये मंदिर भी हो सकते हैं। जहाँ मूर्ति कलाओं का प्रदर्शन हो। उनको देखकर श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हों। तीर्थ स्थान जो नामी है, पवित्र गंगा गोमुख, जहाँ से उसका विकास हुआ है। सचमुच में रमणीय तीर्थ स्थान है। चमड़ों का रोग धुल जाता है। वह स्थान पवित्र है। शेष गंगा की यात्रा गंदगी से होकर गुज़रती है। सभी सम्प्रदाय तीर्थ स्थानों की यात्रा पर जाते हैं। किसी का कहना है। पाप धुल जाता है। पाप क्षमा हो जाता है । पाप कट जाता है पता नहीं कहाँ तक सच है क्योंकि कर्मों का फल तो भोगना पड़ता है। सिफ़ारिश से क्षमा नहीं होता । क्योंकि ईश्वर न्यायकारी है। दयालु होने पर भी क्षमा की बात नहीं आती है। प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दरता से मन खिल जाता है। खुशी छा जाती है। इससे स्वास्थ्य लाभ होता है। हमारे देश में भी तीर्थ स्थानों की भरमार है। पूजा-पाठ करने वाले जाते ही रहते हैं। वैसे भी हर गाँव में मन्दिर हैं। सभी अपने-अपने ढंग से पूजा-पाठ करते हैं और भगवान् को रिझाते हैं। हर कोई अपने घर में भी पूजा करता हैं। संन्ध्या, हवन करता है। विशेष दिनों में तीर्थ स्थानों, मंदिरों और बैठकाओं में भी सामूहिक रूप से जुटते हैं। साप्ताहिक-पाक्षिक या मासिक। व्रत त्योहारों में तो जुटना ही होता है। विशेष तैयारी के साथ फल-फूल, सामग्री, प्रसाद लेकर मंदिर में जाते हैं । मंदिर की शोभा बढ़ जाती है। बेदी पर चलाई विधि होती है। यज्ञकुंड बीच में होता है, यज्ञ के सामान जल, चमचा, घी, सामग्री, फल-फूल लकड़ी आदि पंडित जी होते हैं। मंदिर की शोभा बढ़ जाती है। यज्ञ आरम्भ होता है। सभी की मधुर आवाज़ गूँजने लगती है। बैठक को भी तीर्थ-स्थान कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा। क्योंकि तीर्थ-स्थान का वातावरण छाया हुआ होता है।

घर से निकलते हैं। पैरों से चलकर जाते हैं। जब विदेश के तीर्थ-स्थान पर जाते हैं। विमान का सहारा लेना पड़ता है, यहाँ तो पैदल ही से काम चल जाता है। लाभ बराबर का ही होता है । दूर का ढोल सुहाना होता है। मगर पास का तबला भी कर्णप्रिय होता है। पैसों से तो चलकर आ गये । यज्ञ के पास बैठ गये । लाभ बराबर होता है। आचमन में जल ग्रहण करते हैं । अंग स्पर्श करते हैं । पवित्रता में चार चाँद । यज्ञ-हवन चल पड़ता है। चलकर आ गये । आँखों से यज्ञ की लपटों को यज्ञ सामानों को देखा। कानों से वेद-मन्त्रों को सुना, मुख से मन्त्रों का उच्चारण किया । नाक से यज्ञ सामग्री की सुगंध को सूँघा, हाथों से आहुतियाँ छोड़ीं । घी छोड़ा, यज्ञ के अन्त में भजन-कीर्तन किये । कानों को ठंडक मिली। यज्ञ में फल, प्रसाद या मीठी वस्तुएँ जलाई । सामग्री और फल-प्रसाद के जलने से जो सुगंध फैलती है । उससे पूरा वातावरण सुगंधमय हो जाता है। यज्ञ तो हम आर्य समाजियों ने किया । मगर पास-पड़ोस में अन्यसम्प्रदाय वाले भी बसते हैं। बिना आज्ञा के सुगंधित वस्तुओं से उन्हें भी लाभ पहुँचा। वे चाहते हुए भी लेने से इन्कार नहीं कर सकते। हमने कोई अपनी ओर से बनी-बनाई सामग्री नहीं जलाई । ईश्वर ने तो पहले से बनाकर दिया है। उसी को मिलाकर अन्त में जलाकर उनको सौंपा और हमने भी ग्रहण किया । मक्का, मदीना, रोम या विदेश के तीर्थ स्थानों पर जाने की तैयारी लम्बी करनी पड़ती है । स्थानीय तीर्थ स्थानों पर सीमित मात्रा की तैयारी में ही पूरा फल मिल जाता है । हमने अपने लिये कुछ नहीं माँगा । सारे जगत् के लिए प्रार्थना की और यज्ञ किया । ढिंढोड़ा पीटे बिना काम हो गया । तीर्थ -यात्रा करते हैं तो चलकर जाना होता है। बैठक भी चलकर ही आये । आँखों से यज्ञ देखा, कानों से वेद-मन्त्र सुने, मुख से मन्त्रों का उच्चारण किया, हाथों से आहुति दी । नाक को सुगंध मिली, शरीर के जितने अंग है सभी को संतुष्टि मिली । कोई अंग उदास होकर घर नहीं लौटा । सभी को लाभ ही लाभ हुआ। सच्चे समाजियों को बोध हो गया । किसकी यात्रा क्या है ? सच्चा तीर्थ क्या है ? हम सबकी जानकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने दी । उन्हीं वेदों से जानकारी मिली। उन्हें बोध हो गया था, सच्चा रास्ता यही है । उसी पर संसार को चलने का आदेश था । और कहा – 'वेदों की ओर लौट चलो।' कितने आदर्शी महात्मा थे । उन्होंने भी तीर्थों की यात्रा की थी। गंदगी फैली हुई थी । सोचा सच्चा तीर्थ तो वेद मानने से ही आएगा। और संसार की उस छोड़ अपनी यात्रा पर आगे निकल पड़े । हमारा बोध पूरे रूप से होना कुछ शेष है। सम्भलना होगा । •

जन संख्या

पंडित देवानन्द गरबा

वर्षों पहले महर्षि दयानन्द जी हमारे लिए कई बार शास्त्रार्थ कर चुके । वैदिक धर्म की श्रेष्ठता साबित करने के लिए कोई शास्त्रार्थ की आवश्यकता नहीं। पर दुर्भाग्य से कई लोग जानते हैं कि धर्म में कितनी सारी बातें तर्क संगत नहीं, अर्थात् ग़लत हैं पर मानते नहीं । जानना और मानना दो अलग-अलग बातें हैं। इसीलिए कहा गया है कि **'नित्य सूचि सुखत्मषु अनित्य सूचि दुखात्म ख्यातिर्निविद्या'**, (योग दर्शन) सार यह जो पदार्थ जैसा है वैसा मान लेना होशियारी है । अन्यथा बुद्धि और ज्ञान होते हुए भी आप मूर्ख की श्रेणी में गिने जाते हैं ।

महर्षि जी के समय में मतमतांतर थे, आज भी इतने प्रसार-प्रचार के अलावा वे तीव्र गति से विकसित हो रहे हैं। महर्षि जी के अनुसार अज्ञानता इन मतमतांतरों की जड़ थी, उन्होंने अंधविश्वास को उखाड़ फेंकना उचित समझा। हिंदू की जन-संख्या घटने का मुख्य कारण यही था। लोगों का हिन्दू धर्म से विश्वास उठने लगा था।

अंधविश्वास अंध विश्वास होता है, चाहे इसमें कितना लेपन क्यों न चढ़ा दिया जाय। इस महामारी से छुटकारा पाने के लिए महर्षि जी ने शिक्षा के प्रसार-प्रचार की पद्धति चलाई। कभी अनपढ़ लोग होते थे पर अब शिक्षित वर्ग इसके लपेट में आ जाते हैं, यही बात चिंताजनक है। अंधविश्वासी के पंडितों ने कैसी चाल चली, इस पर हमें ग़ौर करना है।

पौराणिक धर्म महाभारत युद्ध के बाद उत्पन्न हुआ है। इस लड़ाई में कितने श्रेष्ठ धनुर्धारी, योद्धा और पराक्रमी राजा पराजित हुए थे और स्वर्गवासी हो चुके थे। मुग़लों का आक्रमण तभी आरम्भ होने लगा था और वे कमज़ोर राजाओं पर आक्रमण करने लगे । उन्हें परास्त करते गए । जनता बिना राजा के निराश होकर जंगल में शरणागत होते गए ।

कालांतर में लोग आडम्बर होते गए। ऋषि-मुनियों के लिए यह चिंता का विषय बन गया। वैदिक धर्म लुप्त होने लगा। अनपढ़ जनता में ईश्वर पर आस्था नाम मात्र की थी। अतः वे परमात्मा के महत्व पर कथाएँ रचने लगे। श्रेष्ठ राजाओं को भगवान् का स्वरूप समझा जाने लगा। जिनमें श्री कृष्ण जी और रामचन्द्र जी आ जाते हैं । पत्थरों पर भगवान को तराश कर कथाएँ सुनाई जातीं, जिससे लोगों में भक्ति उत्पन्न हो सके। तभी से मूर्ति पूजा का श्री गणेश हुआ। कालांतर में लोग इसी को सच्चाई मानने लगे । मूर्ति में लोग परमात्मा ढूँढ़ने लगे, इन्हीं लोगों को महर्षि दयानन्द ने वाम मार्गी कहा ।

आज राजनीति का डर सभी धार्मिक पुरुषों में समा गया है। राजनीतिज्ञ द्विमुखी होते हैं, कभी बहुमुखी। जैसी जनता वैसा वचन बोलते हैं। हम ऐसा मानते हैं कि घटती हिन्दू जन-संख्या को बचाना इन्हीं के हाथों में हैं। आजकल राजनीतिज्ञ ही परमात्मा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। जनता पर इनकी धाक गहरी होती है। वाम मार्गी को वर्षों से खूब हवा देकर नतीजा तो देख लिया गया। हिन्दू जन संख्या को कठोर आघात पहुँचा है। सालों से आर्य समाज को उतना ही दाना-पानी दिया गया, जिससे यह न मर सके, बल्कि कंगाल की तरह जीता रहे। अब महर्षि दयानन्द के मार्ग पर चलकर देखते हैं, क्या क्रांति लाते हैं। •

महर्षि के व्यक्तित्व और विभिन्न विद्वानों के विचार

पंडिता प्रेमिला सिरतन

ओ३म् परम् मृत्यु अनु परेहि पंथां यस्ते स्व इतरो देवयानत् ।
चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीनि मा नः प्रजां रीरिषो मौत विरान् ।।

यह ऋग्वेद का मंत्र है । अर्थः - हे मृत्यो ! देवमार्ग से भिन्न जो तुम्हारा पथ है, तुम उस पथ पर चली जाओ। सब कुछ देखने, सुनने वाले मृत्यो मैं तुम्हें बलपूर्वक कह रहा हूँ कि तुम हमारी प्रजाओं और वीर पुरुषों को पीड़ित मत करो । शरीर जड़ है, पाँच तत्वों की रचना है। जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश में न बोलने की, न सुनने की, न देखने की, न सोचने की, न अनुभव करने की शक्ति है। सारी ताकत आत्मा की है। आत्मा ही जड़ शरीर की रचनाकार होती है। प्रभु रूप पारस संग करके उसके पिछले जन्मों के पाप धुलते हैं । प्रभु की सुन्दरता निहार कर प्यास बुझती है । प्यार के सागर में डुबकी लगाने से प्रेम की प्यास तृप्त होती है । आत्मा की सर्व सतोगुणी चाह प्रभु-संग से ही भरपूर होती है। वह प्रकृति से बने शरीर में कर्म करते हुए आनन्दित रहती है। आत्मा प्रकृति के पिंजरे में रहते हुए स्वतंत्र अनुभव करती है ।

त्याग, तपस्या, सेवा के साक्षात् प्रतिमूर्ति श्रद्धेय स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्यक्तिव आर्यसमाज के लिए एक अनमोल निधि है। उनका कृतित्व जन-जीवन का अक्षुण्ण निधि है, जो मन, बुद्धि, विचार, संस्कार, वाणी, व्यवहार, कर्म के आधार पर सभी को समृद्ध कर मर्यादाशील बना देता है। ऐसे चरित्रवान् महामानव ने न केवल अपने लिए अपितु समस्त विश्व को सुखदायी बनाया, जिसके प्रयास से सभी के संकल्प, वचन, कर्म पर अच्छा प्रभाव पड़ा। साधना की सर्वोत्तम पुण्य भूमि पर या भव-सागर में बहती अन्य जीवन नौकाओं के लिए प्रकाश-स्तम्भ का कार्य किया। उन्होंने वैदिक ज्ञान द्वारा पृथ्वी पर स्वर्ग की शांति, प्रसन्नता से आपूरित शांति के लिए धन-वैभव, भौतिक पदार्थ के सुख के साथ-साथ आंतरिक सुखानन्द का अनुभव कराया ।

दयानन्द विलक्षण प्रतिभाओं के धनी थे। उनकी अन्तःवृत्ति में शुद्धता और तन, मन, बुद्धि वाणी में पूर्ण पवित्रता थी। उनके संग से लोहा सोना बन गया। उनका एक अनोखा, गरिमापूर्ण, सरल और सादगीपूर्ण व्यक्तित्व था। उन्होंने आत्मिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, सांसारिक कुरूपता को मिटाने के लिए सभी आर्य जनों को वैदिक ज्ञान से भरपूर किया। महर्षि दयानन्द पर समय-समय पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किए। महात्मा गांधी ने उनकी महत्ता का दिग्दर्शन मात्र करते हुए कहा था – 'महर्षि दयानन्द हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर अधिक पड़ा है ।'

महर्षि की ज्योतिस्वरूप आत्म की शक्ति अवर्णनीय थी। उस योगी ने संसार के प्रति आसक्ति को त्याग दिया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने अनमोल शब्दों में कहा कि – *'जिसकी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और जिनके मन ने भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया । जिस गुरु का उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था। उसे मेरा बारम्बार प्रणाम है ।'*

फ्रेंच लेखक रोमें-रोलाँ लिखते हैं – 'ऋषि दयानन्द ने भारत के शक्ति-शून्य शरीर में अपनी दूरघर्ष शक्ति, अविचलता तथा सिंह के पराक्रम फूँक दिये । वे एक उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष थे। यह पुरुषसिंह उसमें से एक था, जिन्हें यूरोप प्रायः उस समय भुला देता है, जबकि वह भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाता है। किन्तु यूरोप को अपनी भूल मानकर उसे याद करने के लिए बाधित होना पड़ेगा।'

प्रो० एफ० मैक्समूलर के शब्दों में 'स्वामी दयानन्द ने हिन्दू धर्म के सुधार का बड़ा कार्य किया और जहाँ तक समाज सुधार का सम्बन्ध है, वे बड़े उदार हृदय के थे। वे अपने विचारों को वेदों पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े-बड़े भाष्य किए, जिससे मालूम होता है कि वे पूर्ण भिज्ञ थे। उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था।'

इस प्रकार स्वामी जी ज्ञान के सच्चे सैनिक थे। अपने द्वारा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को प्रधान नीति बनाकर प्रभु-शरण में लाने वाले योद्धा थे। उनकी आत्मा में परमात्मा था। चर्म-चक्षुओं में दिव्य तेज था और उनके हाथों में इतनी दृढ़ शक्ति थी कि चट्टान पर धन चलाकर पदार्थों को सुदृढ़ व सुडौल बना सके । उनका जीवन सुन्दर फूलों सा बना था। बुझने वाले दीपों में ज्ञान का घी डालकर प्रज्वलित किया । वे एक ऐसे महामानव थे, जिन्होंने स्पष्ट और पूर्ण-रीति से जान लिया था कि उन्हें किस कार्य के लिए भेजा गया है।

देव दयानन्द सरस्वती उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष थे। दुनिया में कितने ही लोग आए और चले गए । कुछ तो अपनी छाप छोड़ गए, जिसे स्मरण कर उनके धवल जीवन से प्रेरणा लेते हैं । ऐसी विशेष आत्माओं को अपना आदर्श मानकर चलते हैं, जो नाम-काम को चरितार्थ करने वाले दिव्य-प्रकाश पुंज थे। वे सभी को कारागार से मुक्त करके, जाति के भेद-भाव के बन्धन तोड़ने के लिए उपस्थित हुए थे। जो हमें आजीवन अभिप्रेरित और अनुप्राणित करते रहेंगे ।

देव दयानन्द सरस्वती धर्मवीर, कर्मवीर, समाज के हितैषी, वेद के पुजारी, बड़े सुवक्ता, महान् तार्किक और पूर्ण उत्साही पुरुष थे। उन्होंने मानवता के उच्च शिखर पर पहुँचकर धैर्य की मूर्ति, सर्वशक्तिवान् की वाणी के आध्यात्म ज्ञान से सभी को सदा सुखी, संतुष्ट निर्भय बनने के लिए मन वचन कर्म से एक होना सिखाया। संगठन का आधार होकर आर्यसमाज के संगठन को स्नेह के सूत्र में बाँधा। ऐसे महान् चरित्र के चारित्रिक गुणों के प्रकाश से स्वयं को प्रकाशित करने का सर्वथा प्रयास करना चाहिए । •

महर्षि दयानन्द के ग्रन्थ

पंडिता दमयन्ती चिन्तामणि

अपने जीवनकाल में महर्षि दयानन्द गाँव-गाँव और नगर-नगर घूम-घूमकर मानव कल्याण के लिए धर्म प्रचार कर रहे थे। उस प्रचार का जनता में अच्छा प्रभाव पड़ रहा था। तब लागों ने अनुभव किया कि महर्षि जी अपने जीवनकाल में जो बोल रहे हैं उनके न रहने पर धीरे-धीरे लोग भुल जायेंगे। अतः लोगों ने महर्षि जी से आग्रह किया कि जो कुछ वे जनता के हित के लिए बोलते हैं, वे उन्हें पुस्तक रूप दे देवें ताकि उनके प्रचार का प्रभाव नित्य रहेगा। महर्षि जी ने लोगों की बात मानली और अपने प्रवचनों को पुस्तक रूप दिया। आज वही पुस्तकें जन कल्याण के लिए निधि बन गयी हैं।

इसी प्रकार १९ वीं शताब्दी के अंतिम दशक के उतरार्द्ध में बंगाल से कुछ सैनिक मॉरीशस आये थे और वे अपने साथ महर्षि जी के दो प्रसिद्ध ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश और संस्कार विधि"लाये। उन्हीं ग्रनथों में से सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन करके कुछ मॉरीशस वासियों ने यहाँ पर सत्यार्थप्रकाश का प्रचार आरम्भ कर दिया। फल स्वरूप मॉरीशस में आर्यसमाज की स्थापना हुई और आर्यसमाज आनदोलन की प्रगति दिन-दूनी रात-चौगुनी होने लगी।

आज हम महर्षि जी के उसी अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश और अनेक अन्य ग्रन्थों पर कुछ चर्चा करेंगे। सर्वप्रथम ध्यान देते हैं उनकी अमर कृति सत्यार्थप्रकाश पर। इस पुस्तक में दो भाग हैं, एक है पूर्वाद्ध और दूसरा उत्तरार्द्ध। पूर्वाद्ध में १० समुल्लास हैं। उनमें वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी है। यह मण्डन भाग कहा जाता है। उत्तरार्द्ध में ४ समुल्लास हैं, जिन्में भारत के मत-मतान्तरों, नास्तिक मतों, ईसाई-मत और मुस्लिम मत पर समालोचना की गयी है। यह खण्डन भाग कहा जाता है। खण्डन भाग अज्ञानियों के लिए ओषधि रूप है और मण्डन भाग ज्ञानियों के लिए आत्मिक भोजन है। इस पुस्तक के अध्ययन से महर्षि जी का प्रयोजन मालूम होता है कि वे मानव जाति को अज्ञान रूपी अन्धकार से निकाल कर वैदिक धर्म का प्रकाश दिखलाना चाहते थे। उन्होंने इस पुस्तक में कहा है कि, "मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है।"

इसी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के सम्बन्ध में पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी ने कहा कि, "यदि सत्यार्थप्रकाश की एक प्रति का मूल्य एक हज़ार रुपया होता तो भी मैं उसे सारी जायदाद बेचकर खरीदता, मैं जिधर देखता हूँ, उधर ही सत्यार्थप्रकाश में वह विद्या की बातें भरी पड़ी हुई, पाता हूँ कि जिनका वर्णन करते हुए मनुष्य की बुद्धि चकित हो जाती है। मैं ने १८ बार सत्यार्थप्रकाश विचार पूर्वक पढ़ा है और जब जब उसे पढ़ा, तब-तब नये से नये अर्थों का भाव मेरे मन में हुआ है।"

अब महर्षि जी की दूसरी पुस्तक 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' पर चर्चा करेंगे। यह पुस्तक चारों वेदों के भाष्य की एक भूमिका है। इसमें वेदों की उत्पत्ति, गणित विद्या, तार विज्ञान, विमान आदि अनेक विद्याओं का वेद से मूल मन्त्र प्रस्तुत किये गये हैं। फिर इसमें वर्णोश्रम धर्म, पुनर्जन्म, प्रामाण्य-आप्रामाण्य ग्रन्थों का विषय, वैदिक अलंकारों और प्रशनोत्तर रूप में वेदार्थ करने की शैली पर सारगर्भित रीति से प्रकाश डाला गया है।

अब उनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक 'संसार विधि' पर कुछ चर्चा करेंगे। इस पुस्तक में १६ संस्कारों का वर्णन है। इन संस्कारों के प्रताप से हमारे पूर्वज अपनी सन्तान के उत्तम और सच्चरित्र बनाने का प्रयत्न करते थे। महर्षि जी ने प्राचीन प्रमाणों के आधार पर इस ग्रन्थ को रचा है। शान्तिदायक वादमन्त्रों द्वारा आत्मिक प्रसन्नता और हवन-यज्ञ द्वारा शारीरिक आरोग्यता प्राप्त होती है। एक व्यक्ति के जीवन निर्माण का पहला संस्कार गर्भाधान है और अन्त्येष्टि अंतिम संस्कार है जो जीवन के अवसान का कर्म है। संस्कार है क्या? महर्षि जी ने सत्यार्थप्रकाश के अंत में जो **'स्वमन्तव्यामन्तव्य'** भाग है उसमें इस बात को समजाया है- "संस्कार उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवें।" फिर उन्होंने संस्कार विधि ग्रन्थ की भूमिका में समझाया है -"जिसे करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तानें अत्यन्त योगय होती हैं, इस लिए संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।"

महर्षि जी ने व्याकरण शास्त्र की पुस्तक 'वेदाङ्ग प्रकाश' १६ भागों में है। महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी लिखी है जो व्याकरण शास्त्र का मूल आधार समझी जाती है। महर्षि दयानन्द का यह वेदाङ्ग प्रकाश अष्टाध्यायी के अर्थ दर्शाने का साधन है। वेदार्थ जानने के लिए अष्टाध्यायी और निघण्टु तथा निरूत्त प्रधान साधन समझे जाते हैं। इन प्रधान साधनों की श्रेष्ठता दिखलाना और उनके पढ़ने की ओर रुचि उत्पन्न करना वेदाङ्ग प्रकाश का मुख्य उद्देश्य है।

'पंच महायज्ञ विधि' नित्य कर्म विधि की महर्षि दयानन्द की एक छोटी-सी पुस्तक है। इसमें पंच महायज्ञो का विधान है। वे पंच महायज्ञ इस प्रकार हैं- ब्रह्म यज्ञ अथवा सन्ध्या-उपासना तथा वेद का पठन-पाठन जिससे एक व्यक्ति की आन्तरिक शुद्धि हो, दूसरा-देव यज्ञ अथार्त् हवन-यज्ञ जिसके द्वारा वातावरण एवं बाह्म की शुद्धि हो, तीसरा – पितृ यज्ञ अथार्त् जीवित माता पिता और बड़े लोगों की सेवा-सुश्रुषा, चौथा - बैलिवैश्व देवयज्ञ अथार्त् मानवेतर अथवा पशु-पक्षियों की देखभाल और पाँचवा है अतिथि यज्ञ अथार्त् घर पर आये हुए मेहमानों, विद्वानों एवं साधु-संतों का यथोचित आदर सत्कार।

गौ आदि मुक पशुओं के प्रतिनिधि रूप में महर्षि जी ने 'गोकरुणा निधि'पुस्तक लिखि है। इस पुस्तक के बनाने में महर्षि जी का जो अभिप्राय था। वह हम उन्हीं के शब्दों में सुनते हैं – " यह ग्रन्थ इसी अभिप्राय से रचा गया है कि जिससे गौ आदि पशु जहाँ तक सामर्थ्य हो बचाये जावें और उनके बचाने से दूध, घी और खेती से सब को सुख बढ़ता है।" महर्षि जी ने गौ को प्रतिनिधि बना कर सभी पशुओं की रक्षा का समर्थन किया है। उन्होंने यहाँ वेद के प्रथम मंत्र का प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि पशु हिंसा के यागय न हों। फिर उस मंत्र के अन्त में आता है-"यजमानस्य पशून पाहि" अथार्त् हे मानव! तू इन पशुओं को कभी मत मार, सदा इनकी रक्षा कर। महर्षि जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में इस बात का समर्थन किया है कि, " जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही नषेध है।"

जब-जब और जहाँ-जहाँ महर्षि दयानन्द धर्म उपदेश करते थे। वे लोग उनसे आर्य सिद्धान्तों के विषय में प्रश्न किया करते थे। इस कठिनाई के निवारण के लिए उन्होंने अमृत सर में 'आर्योद्देश्य रत्नमाला' को प्रकाशित किया। इस पुस्तक में उन्होंने सौ सिद्धान्त रूपी रत्नों को इकट्ठा करके माला के रूप में पिरोया है।

महर्षि दयानन्द ने काशी के प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानन्द और बाल शास्त्री आदि पंडितों से शास्त्रार्थ किये। कई मास तक महर्षि दयानन्द जी काशी में रह कर उपदेश करते रहे। परन्तु राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द को महर्षि जी के सामने आकर शास्त्रार्थ करने अथवा शंका समाधान करने का कभी साहस न हुआ। परन्तु ज्यों ही वे काशी से चले गये तो राजा साहब ने एक पुस्तक बना कर और उसपर स्वामी विशुद्धानन्द की सम्मति लिखवा कर प्रकाशित कर दी। अतः उनके आक्षेपों के उत्तर में महर्षि जी ने 'भ्रमोच्छेदन' और 'अनुमोच्छदेन' पुस्तकें निकालीं।

फिर महर्षि जी के वेद भाष्य पर पं० महेश चन्द्र न्याय रत्न ने आक्षेप किये तो उन्होंने 'भ्रान्ति विवरण' पुस्तक में उन सभी आक्षेपों को निर्मूल करके दिखा दिया है।

महर्षि दयानन्द जी ने 'व्यवहार भानु' पुस्तक में बहुत उत्तम रीति से प्रकाश डाला है कि हमें अपने जीवन में लोगों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए।

महर्षि दयानन्द ने "आर्याभिविनय" पुस्तक में ऋग्वेद और यजुर्वेद से लेकर १०८ मन्त्रों की व्याख्या की है। महर्षि जी ने वेद विरुद्ध मत खण्डन पुस्तक में 'वल्लभाचार्य मत' को वेद विरुद्ध मत सिद्ध किया है। महर्षि दयानन्द ने स्वामी नारायण मत खण्डन पुस्तक में स्वामी सहजानन्द के चलाये हुए स्वामी नारायण मत का प्रश्नोतर रीति से आलोचना की है।

महर्षि जी ने 'वेदान्ति ध्वान्त निवारण' पुस्तक में नवीन वेवान्तियों के 'जीव ब्रह्म की एकता' और जगत मिथ्या है आदि सिद्धान्तों की बल पूर्वक आलोचना की है।

महर्षि जी की 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' पुस्तक संस्कृत बोलने के संबन्ध में है जिसमें संस्कृत के वाक्य और उनके सामने उनका हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

संवत् १९२१ और २२ मे जब महर्षि जी दो वर्ष तक आगरा में रहे तो उन्हीं दिनों उन्होंने 'पाखण्ड खण्डन' पुस्तक लिखी। फिर १९२३ के अन्त में उन्होंने इस पुस्तक की कई हज़ार प्रतियाँ छपवायीं। वैशाख प्रतिपदा संवत् १९२४ अथार्त् १२ अप्रैल सन् १८६७ के कुम्भ मेले के अवसर पर हरिद्वार में उन्होंने इसका मुफ्त वितरण कराया।

संवत् १९३४ में महर्षि जी ने यजुर्वेद भाष्य आरम्भ किया, फिर उसे पूरा किया। इससे पहिले उन्होंने ऋग्वेद का भाष्य आरम्भ किया था, पर उसे वे पुरा न कर सके। उन्होंने ऋग्वेद भाष्य के ७ वें मण्डल के ५ वें अषृक के ५ वें अध्याय के ३ रे मंत्र तक भाष्य कर पाया।

महर्षि जी ने काश शास्त्रार्थ के बाद 'अद्वैतमतखंडन' पुस्तक 'कवि वचन सुधा' मासिक पत्र में प्रकाशित करायी इसके अतिरिक्त शास्त्रार्थ हुगली, शास्त्रार्थ चान्दा पुर, शास्त्रार्थ बरेली और शास्त्रार्थ जालन्धर के विषयों पर महर्षि जी के ट्रेक्ट निकले। महर्षि जी पूना नगर में १५ व्याख्यान दिये थे। वह व्याख्यान माला 'उपदेश मंजरी' नामक पुस्तक में मिलती है।

यह रहा महर्षि जी की पुस्तकों का छोटा - सा परिचय। •

परमेश्वर कैसा है ?

ओ३म् स पर्य्यगाच्छुक्रमका यमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमयापविद्धम
कविर्मनीषी परिभू स्वयंभूयो थातथ्यतो अथांन्व्य दधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।

यजु० ४०/८

LES ATTRIBUTS DE DIEU, NOTRE SEIGNEUR

**Om ! Sa paryayagaa chukram akaayam avranam asnaaviram shudham apaapa - vidham.
Kavir manishi paribhooha swayam-bhoora-yaatha-tathyato arathaan-vi-adadhaa chaashvatibhya samaabhya.**

Yajur Veda 40/8

Glossaire / Shabdārtha

Sa – Dieu est;
Chukram - La vérité incarnée, tout-puissant, resplendissant, intrépide omnipresent et penetrant tout,
Akaayam - Il est incorporel – Il n'a ni un corps astral ou subtil, et ni un corps matériel, ou physique c'est-à-dire, un corps en chair et en os;
Avranam – il n'a ni blessures, ni plaies et ni cicatrices. Il est invulnérable et impérissable;
Asnaaviram – Il n'a ni artères, ni veines , ni muscles et ni nerfs;
Shudham – Il est pur, saint, sublime, juste, miséricordieux et immuable;
Apaapa-vidham – Il ne commet aucun péché;
Pari agaata – De toute éternité Il est au-dessus de tout, omniprésent et pénétrant tout. Il est vif et le plus rapide de tout l'univers, nul ne peut le surclasser;
Kaviha – parfait/sans défaut, omniscient, clair-voyant, la béatitude parfaite;
Manishi - Il est résolu, imperturbable, ne dévie jamais de sa ligne de conduite. Etant pénétrant tout, il est toujours présent dans notre âme et dans notre esprit . Il est au courant de tout ce que nous pensons à tout moment;
Paribhooha – Il sanctionne ou châtie tous les malfaiteurs;
Swayambhooha – Dieu existe de toute éternité. Il n'est pas né d'un père et d'une mere et n'a nullement été créé par quiconque . Il est incréé et immortel. C'est lui qui est le créateur suprême du monde et de tout l'univers;
Shaasshvatibhya – Eternel, qui n'a ni commencement ni fin, impérissable;
Samaabhyaha – pour son peuple et pour toutes les autres créatures;
Arthaan – d'après les Vedas;
Yaatha- tathyataha – L'établissement de l'ordre et de la discipline sans faille, selon les principles éternels du Seigneur à chaque renouvellement de la création;
Vi-adadhaat – Par-dessus tout , ce Seigneur , qui est le créateur de ce monde merveilleux et de cet univers parfait, est notre Dieu Unique et digne d'être adoré;

Interprétation / Anushilan

Ce verset (mantra) en provenance du Yajur Veda nous transmet ce très beau et pertinent message concernant les qualités ou la nature voire l'ensemble des caractéristiques fondamentales propres à Dieu, Notre Seigneur :

"O les hommes!" nous apprend ce mantra, "Sachez que seul cet Etre Suprême, qui n'a jamais pris de naissance, qui n'a pas été créé par quiconque, mais qui existe de tout temps, est incréé, incorporel, invulnérable, immortel, impérissable, immuable, omniscient, tout puissant, omniprésent, pénétrant tout, parfait, pur, saint, juste, intrépide, miséricordieux et libre de tout attachement du monde. Il est la source de toute lumière, de toute joie, de tout bonheur et le détenteur de toutes les connaissances (le savoir / la science) et de toute la richesse du monde.

C'est bien lui qui dès la création du monde a légué à tous les hommes "(à toute l'humanité) pour leur

bien-être et leur salut, par le truchement de quatre sages, les Vedas, qui englobent toute la vraie connaissance du monde matériel et spirituel, y compris le savoir-vivre, les valeurs humaines et les autres disciplines complémentaires menant à l'éducation complète de l'homme afin qu'il puisse fonctionner convenablement dans la société, faire progresser le monde et atteindre, par la spiritualité, la Félicité Eternelle ou la libération de son âme du cycle éternel de la vie et de la mort sur la terre.

Mais si ces sages n'avaient pas transmis cette connaissance de génération en génération il n'y aurait pas eu de civilization et de progrès que nous connaissons de nos jours. Il n'y aurait pas eu d'intellectuels, de génies, de sages, d'artistes, de scientistes, d'élites et d'autres intellectuels. On serait resté à l'état barbare et personne n'aurait su la voie de la spiritualité menant au but ultime de la vie humaine de ce monde.

Pour atteindre ce but ultime il nous faudra adopter ces quatre grands principes suivants dans notre vie –

(i) **'Dharma'** – Notre devoir envers l'humanité, notre foi inébranlable en Dieu, une culture de discipline, de tolérance, d'honnêté, de dévotion, de méditation, d'équité, d'abnégation, de justice, de magnanimité, et de maîtrise de soi.
(ii) **'Artha'** – L'acquisition de biens et de richesse par des moyens honnêtes et par le dur labeur.
(iii) **'Kaama'** – L'accomplissement de nos justes et légitimes désirs, et le rejet avec mépris de nos désirs malsains.
(iv) **'Moksha'** - La Félicité Eternelle / la libération de l'âme de l'enveloppe corporelle voire du cycle éternel de la vie et de la mort.

C'est bien seul Cet Être Suprême, tout-puissant, resplendissant et majestueux par tous ses attributs qui mérite l'adoration de tout le monde! •

N. Ghoorah

SWAMI DAYANAND - L'APôTRE DE DIEU

Dr. Indradev Bholah Indranath

En initiant les fidèles à la récitation, en toute connaissance de cause, du Guru Mantra / Gayatri Mantra
--verset puisé de Vedas.

En donnant au monde des preuves incontestables de la culture védique de base, en provoquant un éveil de l'esprit chez les fidèles par des sermons émouvants, avec pour conséquence leur remise en question de toutes les pratiques religieuses, sociales, culturelles et autres coutumes douteuses.

En dissipant l'illusion malsaine créée par des charlatants (pakhandis), en ce qui concerne la religion et la culture, pour leurrer et exploiter la crédulité des gens pour leur gagne-pain. Et en propulsant la Religion Védique d'une façon convaincante dans le monde, ″ Swami Dayanand Saraswati est sans nul doute L'Apôtre de Dieu ″ , pensent les sages et les savants.

"On n'est ni grand ni petit de par sa naissance" préconise Swami Dayanand et le Vedas. "On devient grand par son éducation, sa connaissance, ses qualifications, sa compétence, son savoir-faire, son intelligence, son bon comportement, son intégrité et sa magnanimité." Il donna des répliques cinglantes au sujet du castéisme, une pratique qui prévalait dans la communauté hindoue. Il condamna vigoureusement et bannit cette pratique qui va à l'encontre de droits de l'homme et il réussit à révaloriser et à réhabiliter au sein du peuple indien les gens défavorisés et rejetés par la société.

"Que les mauvaises pratiques sociales soient abolies ! Qu'il n'y ait aucune différence ou discrimination entre les riches et les pauvres !

Que les dames aient le digne respect et leur droit égal à l'homme dans la société !

Que les orphelins, les veuves et les démunis ne soient nullement maltraités !"

Prêchait le grand Swami Dayanand, et ainsi il créa une situation propice où il donna la dignité à tout le monde.

"Le Vedas est la source de toute la vraie connaissance. On s'instruit en lisant les livres sacrés védiques. On n'atteint la Félicité Eternelle (Moksha) que par l'étude de Vedas, en mettant en pratique ses enseignements et par la méditation en Dieu qui est unique au monde."

C'est ainsi que Maharshi Dayanand Saraswati, que nous aussi nous considérons comme L'Apôtre de Dieu, par excellence, et envers qui nous sommes redevable pour toujours, nous indiqua la bonne voie qui mène vers notre salut, c'est- à-dire, vers le but ultime de la vie (Moksha) de l'homme sur la terre. •

Apta purusha, Maharishi Dayānand Saraswati

Apta purush means Vedic Sage, namely- a person with the highest level of intellectual sophistication in *parā vidyā* (spiritual knowledge) and refined skills in applying such knowledge in mundane life. The English word 'apt' refers to a person who has capability, talent, accuracy, appropriate knowledge, expertise and is quick-witted, ingenious, incisive, and efficient. The French word *'apte'* denote similar qualities.

Living organisms follow the laws of nature. The human race is the highest form of life which has an innate capacity to achieve self-realisation *(ātma sākshātkāra)* and God-realisation *(ishwara sākshātkāra)*. As such human beings are bound in one way or the other to follow the rules established by God. Even those who do not believe in God reckon the existence of a 'supreme force driving the universe'; others call it the established 'laws of nature'.

Hymn 34/12 of the YajurVeda *'....rishirdevo devānāmabhavah shivah sakhā…'* expounds on the benefits of abiding to these edicts. A seer is a person who is empowered with the right knowledge *(tatva jnāna)* about the three eternal things, namely -- (the primary or base matter *(prakriti - satva, rajas & tamas)*, the soul *(jeevātmā)* and God *(Ishvara)*. He has a highly-crafted personality where his thoughts *(manasā)*, speech *(vāchā)* and *(karmanā)* are in total harmony. Yog Darshan refers to such person as *'akshi pātra'*, i.e. one who cannot live by any defect like the eye which cannot bear the presence of dust even if it be of negligible size.

Ishvara pranidhāna

We should look upon God as a friend who is Omnipresent *(sarvyāpak)* and Omniscient *(sarvajya)*. As such He is continuously observing our thoughts, speech and actions. Being Just *(nyāyakāri)* He awards, in due time, the fruits of our actions. As the all-Merciful *(dayālu)* He always prompts us on what is right *(dharma)* or wrong *(adharma)*. We are free to choose or ignore this divine guidance… we are bound to reap the fruits of what we sow!!

Hymn 34/18 of the YajurVeda *'Icchanti twā somayāsah sunvati somam dadhati prayāngsi | Titikshante abhishastim janānāmindra twadā kaschan hi praketah ||'* expounds on the characteristics of a right and proper person to be reckoned as a true preceptor and rishi (Vedic seer), inter alia: be level-headed when confronted to unfair criticism-fame *(nindā-stuti)*, loss-profit *(hāni-lābha)*; persevere to attain righteous goals; never compromise on principles *(dharma)*; be considerate towards all living beings in the same manner as he care for his own self *(ātmavata vyavahāra)*.

We refer to Maharishi Swāmi Dayānanda Saraswati as a great reformer of the modern times. Amongst the several occurrences of his life, a few listed below reveals all the qualities of the personality of an *'āpta purusha'*, a Vedic seer *(rishi)* and a real precepto. He had an unbendable faith in God. He practised *Ishvara pranidhāna* with ongoing awareness of God as an witness to our thoughts, speech and actions and total surrender to God.

A huntsman of truth

The death of his uncle and sister stirred Mool Shankar's mind to look for ways and means 'to overcome death'. These events were the first quakes of renunciation (*vairāgya*, a jolt which had set off an unquenchable thirst for knowledge about life and death.

We all witness people dying every day. Yet we cling to an unnatural perception that 'I shall ever remain in the present body!'

Motivated by his father, young Mool Shankar resolved to keep fast, remain awake for a whole night, perform idol worship on the occasion of Maha Shivaratri and be graced by the *'darshan'* or sight of Shiva in person. Alas! By the third quarter of the night all the devotees, including the priest and Mool Shankar's father, fell asleep. He observed a rat desecrating the idol and eating the offerings. The sight of the *supposedly om-*

nipotent idol incapable of pushing off the rat shook his belief in idol worship. He woke his father who could not clear his doubts. He ran back home, broke the fast and vowed to live up to having the *darshan* of the true Shiva.

We are all witness to the dumping of offerings to idols in garbage bins. Many claim that idol worship is a ladder. Yet, we simply fail to realise anyone using a ladder leaves it once he accomplishes his goal ...AND we cling to the ladder throughout a lifetime!

Renunciation on the path of God-realisation

In his quest for God-realisation, Mool Shankar abandoned his parental abode where he was leading a comfortable life. His first encounter was thugs in the garb of *sādhus* to whom he gave out his dress and ornaments. He did not look back and continued his pursuit. He observed penance enduring cold weather, faced life-threatening perils. He stepped into the *sanyasa āshram*, was given the name of Swāmi Dayānand Saraswati and thereafter lived an ascetic. He never looked back to comforts.

He was often hosted by princes and kings but never stayed for long. He availed of the facilities put at his disposal to impart the Vedic teachings though discourses and writings.

He founded the Arya Samāj (Mumbai) and the Arya Paropkārini Sabhā (Ajmer) to further his works and legated all to these organisations without holding any key post as well as refused to be looked upon as a Godman, messiah or prophet. He was humble and forceful. He walked-the-talk, i.e. practiced what he preached, indeed a rare combination that illuminated his personality.

The ideal student

Swāmi Dayānand joined the ashram of Swāmi Virjanand and lived up to the confidence of his benefactors who had arranged for his meals, milk and oil (for light). He emerged as an ideal student. At the time of parting from the revered Guru he promised to dedicate his life to free the Indian population from the shackles of ignorance, superstitions and colonialism. He exhorted people to go 'Back to the Vedas', to live life as per the ordinances of *'Dharma'* and promoted the concept of *'vasudaiva kutumbakam'*, i.e. the world as but one family. True to his vow, he rekindled the light of truth of Vedas and enlightened humanity.

A bold activist of Dharma

Upholding the teachings of the Vedas, Brāhmana Granthas, Upanishads, Manusmriti and other allied Vedic texts *(ārsha granthas)* Swāmi Dayānand did not establish any new faith, sect or religion. He revived the *'Sat Sanātan Vedic Dharma'*, i.e. the most ancient true way-of-life, given by God to four rishis (high-minded seers) at the time of creation of the human species. The Vedas are the manuals to empower human beings with a highly crafted personality and succeed in the four endeavours *(purushārtha)*: (i) *dharma*, the compass to lead a virtuous life till death; (ii) *artha*, work to become master of material wealth; (iii) *kāma*, benefit from that wealth; and (iv) *moksha*, God-realisation subsequent to self-realisation.

A scrutiny of the ten principles of the Arya Samaj reveals the effective and efficient farsighted guidelines to build up an ideal environment for the physical, moral and spiritual development of the whole human race, indeed a colossal plan which stands out of the crowd laid down by Swāmi Dayānand:

- The Concept of God *....as the primary source of true knowledge, ...as omnipresent, all-pervading, omniscient, all-knowledgeable, just, merciful ...*etc. leaves no room for anybody to believe that he only holds the secrets or will not have to account for his deeds;
- The duties of all noble people *...to live and lead others to live as per the teachings of the Vedas;*
- Unbendable in truth *...ever ready to accept truth and shun falsehood;*
- Zero compromise on values *...to think, speak and act in line with dharma (righteousness) after sieving right and wrong;*
- Meritocracy *...be loving and just while dealing with others upholding desirable qualities;*
- Noble objectives *...to do good to the whole world by uplifting the physical, moral and spiritual standards of all;*

- Selflessness ... *not to be content with one's own welfare, but look for one's welfare in the welfare of all;*
- Role model advocating rights and responsibilities ...*the need for all to follow common rules of general welfare;*

An accomplished yogi

Ahimsa: Swāmi Dayānand Saraswati's treatise or masterpiece 'Satyārtha Prakāsh' spells out vegetarianism as the only suitable diet for human beings as per the physical structure of our body. Meat eating is tantamount to condoning cruelty towards other living beings to satiate an unwarranted craving. He wrote the 'Gaukarunanidhi' in support of the campaign to protect cows in particular.

Brahmcharya: Bare handed Swāmiji was seen to have pushed away a bear, broken the sword of an attacker and halting the horses-driven chariot of Sardar Vikram Singh sheds light on the extra-ordinary physical strength of the body by the observance of brahmacharya (celibacy).

Satya: He refused to trade in principles and declined the offer of eminent posts, large donations, etc. from people who upheld idol worship, false beliefs, illogic and anti-Vedic practices. His argument was 'I shall continue to preach only the truth for which I can leave the area under your control but I cannot run away from God's kingdom.'

He was adamant on truth and paid a heavy price; he was poisoned several times and the fatal blow came from people who conspired after he denounced the relationship between the ruler and a prostitute as that between a lion and a bitch.

Empathy towards all: He justifies his pardon to the cook who adulterated his milk with lethal poison, at the time when the latter realised and admitted his fault, as part of his mission to set free people. He had on several occasions objected to the imprisonment of 'ignorant people' who had caused him undue physical hardships. Sending fruits daily to one person who used to defame him caused that person to drop to his feet and seek forgiveness for the wrongdoings. *The evil acts of mean people give no reason for noble people to drop virtue!*

The apex of Ashtānga Yog: Swāmiji's recourse to Samadhi to resolve complex issues, during debates on spiritual matters as well as when authoring books, throws light on the capacity building process through the practice of Yog as taught by Maharishi Patanjali.

He possessed a splendid cultured personality. Through his erudition, effective, fluent and authentic oration he caught the attention of masses in thousands, yet he was immune from the plague of *lokeishna, putreishna and vitteishna,* i.e. cravings for fame, a line of followers, material gains.

'Sapta rishayah pratihitah...' (YajurVeda 34/55) elaborates on the five *jnānendriyan* sense organs of learning (taste, sight, smell, touch and hearing), *mana* (mento-emotional centre) and *buddhi* (intellect) as seven rishis in our body. They are and will be so only when they are engaged in acquiring the right knowledge *(tatva jnāna)* about the trinity, i.e. *Ishvara*, *jeevātmā* and *prakriti*. Only then we shall be empowered to differentiate *vidyā* (true knowledge) from *avidyā*. A sound moral life and divine contemplation will empower us with a stable and highly-crafted personality where our thoughts, speech and would be in total harmony. We would become seers and as role models pave the way for others to become seers.

The sophisticated treatise on various subjects in the Satyārtha Prakash, RigVedadi Bhashya Bhumika, Samskāra Vidhi brings to light the *'āpta purusha'* in the towering personality of Maharishi Dayānand Saraswati. He became so through the precise picking of the signals from the inner voice or intuition at various phases of his life and keeping them alive throughout.

Rishi Bodh Mahotsav is time for us to tune ourselves to be in range and catch the signals of our inner voice at each and every move of our life.

Dharma should be the compass of our life. *Shudh gyāna, shuddha karma and shuddha upāsanā* (right knowledge, deeds & contemplation of God) are essential ingredients to progress on the rugged path of the Vedic way of life.

Walking-the-talk will render us eligible to rightly claim ourselves to be *'rishi santans'* (belong to the family tree of Vedic seers). •

Bramdeo Mokoonlall

Darshan Yog Mahāvidyālaya, Gujarat, India
On study leave from Arya Sabha Mauritius

In the context of Rishi Bodh Utsav

THE ENLIGHTENMENT OF A SEER

(Rishi Bodha)

Sookraj Bissessur

Saviours are born to save the lone and the forlorn. Since the creation of the world, mankind has always been blessed by the Almighty God with the birth of noble souls, sages, seers and geniuses to take care of the welfare and progress of one and all.

One such historical event occurred in the early 19th century - A.D., when a small boy called Moolshankar was born in Jivapura - location of Tankara town, Morvi state in Kathiavar province , Gujarat, India.

'Bodha' means enlightenment of an individual soul by the grace of the Supreme Soul. 'Rishi Bodha' is eventually one among those rare events in the history of mankind that provoked a re-thinking in a very logical and rational way.

It is well known that the incident which led to 'Rishi Bodha' occurred during "Shivaratri night". Moolshankar was the childhood name of Rishi Dayanand Saraswati. When he was only fourteen years old his father asked him to participate heart and soul in the festival of Shivaratri.

His parents were staunch followers of the SAIVA-MATH – that is devotees of God Shiva. His father sincerely wished to see his son growing up as a bona-fide and faithful shaivite (a devotee of Lord Shiva). Usually and almost daily he cultivated the habit of narrating the mythological stories : e.g. stories about Shiva written in the 'Puranas', most particularly how Shiva killed the mighty demons.

It is the growing interest and tradition that on Shivaratri the devotees should fast during the day, and they must spent the entire night in a temple. After a long day fast, Moolshankar accompanied his father to the Shivalaya of the locality.

In his biography Swami Dayanand says : "I tried to refrain from slumber and drowsiness by sprinkling my eyes now and then with cold water. Curious thoughts and questions began to arise in my mind. Is it virtually possible that this very idol is God? Is he, who on account of religious and spiritual background the Mahadeva (the great God), the pronouncer of curses upon men and is being invoked as the Lord of Kailash, the Supreme Being and the highest divinity?" Such positive but dubious concepts which the learned widely described as the starting point of all philosophies eventually intruded into his young mind.

Under such serious probe of his inquisitive mind, the crucial hour he had been awaiting with fervent hope for the appearance of God Shiva and his blessings to his devotees was very imminent.

Quite surprisingly all vigil keepers were asleep, including my father. In an almost vigorous passing glance, his eyes saw no God Shiva, but a mouse that emerged from a hole and climbed to the altar, passed on the Shivling (idol) and came near the offerings upon which he feasted and went away without being disturbed or sanctioned. This incident triggered enlightenment in him. He was finally convinced that an idol is not at any cost, the true Shiva. He, thus broke his fast and earnestly strode out in search of the true Shiva.

Later on, other sad events occurred when he was eighteen years. His younger sister, who was then fourteen years fell abruptly ill and breathed her last. His beloved uncle died after some time. Swamiji described the events as having caused him a huge shock and consequent long and sad meditation upon the instability of human life.

As a result, there arose in him an enlightening and profound conviction that "nobody in this world could escape the cold and mighty hands of death, including – himself." He therefore got entirely engrossed in the determination to find an assurance and ways of attaining – Mukti (liberation) with a view to conquer Death.

Hereafter, Dayanand is said to have left home, wandering far and wide in the jungles amidst abnormally hard conditions and situations in search of a Guru (Preceptor). All was not in vain, he met his blind guru Swami Virjanand, and studied under his strict guidance for approximately three years. From the sacred and spiritual hut of this blind sage, emerged the fearless social and religious reformer Maharshi Dayanand Saraswati.

In a deeper sense 'Rishi Bodha' is therefore not only an occasion to know how Swami Dayanand got enlightened, but should be a moment of paying special tribute by eliciting lessons from his teachings and life with a strong and firm determination to adapt accordingly one's personal life's patterns.

As a mater of fact, it should be noted that Dayanand's noble and precious teachings covered all aspects of human life, right from ethics and moral attitudes, statecraft and sociology to the 'Adhyatmic' (Metaphysical) and Dharmic religious nature of belief.

In fact, the practical and pragmatic application of the above lies in the ability and capacity to know what is good (true) and what is bad (false) – which alone guides all the aspects of belief. It is only at such a time that one knows what is the essence of his beliefs. Consequently, this allows one to build up faith, conviction and courage to scrutinize reality in a rational way.

Swami Dayanand reignited a flame, the Vedic light that is burning with a very sweet Dharmic fragrance. Rishi Bodha is an appropriate time to draw huge inspiration from the illustrious life of Swami Dayanand Saraswati with an ambition to uphold the Vedic precepts with all due respect.

On this auspicious occasion of Rishi Bodha may we take the vow to accept truth and reject falsehood?

Aano bhadrah kratavo yantu visvatah

Veda

(may wisdom come to us from all sides) •

THE FAST LEADING TO THE ENLIGHTENMENT OF THE GREATEST EMANCIPATOR OF MANKIND

Swami Dayanand Saraswati

Pt. Manickchand Boodhoo, Arya Bhushan

It was in 1837,177 years ago. An unprecedented event occurred in a Shiva Temple in Tankara, a village in the province of Gujrat, India. A prominent Brahmin family from the North had established itself there some centuries ago. Shri Karshanji Lallji Tiwari traditionally of the Samvedi lineage was the head of that family. Being a Zamindar, a banker and a money lender, he was considered as a very powerful man and of high status, very influential in the circle of higher authorities of his time.

Shri Karshanji Lallji Tiwari was a staunch shaiivite by faith. He was a great devotee of Lord Shiva, popularly known as Kailash Pati and Mahadeva. He had built a temple of his own, naming it "Kubairnath Mahadeva". He practised his daily Parthiv Puja (idol worship) there. His family had a very strong tradition of fast-keeping during the celebrations of festivals. Fast-keeping had become a rule to be followed without fail and with perfect obeisance.

The festival of Mahashivratri was fast approaching and Shri Karshanji wanted his eldest son, Moolshankar, to be initiated in the Parthiv Puja in keeping with that tradition. However, a family discussion had ensued in regard to the initiation and fast-keeping of Moolshankar who was 14years old.

"Mul!" said Shri Karshanji to his son with perfect authority in his voice, you will have to keep the fast and perform the four parts of the Parthiv Puja and also keep vigil during the whole night of the Chaturdashi as per our tradition. "No!" remonstrated his wife immediately. "How can my son keep the fast and vigil during the whole night at such a tender age of 14?"

"YES," insisted Shri Karshanji unmoved by his wife's protest. "He will have to keep both the fast and the vigil as an established rule and tradition of our family. It is the right time for him to do so. He will be initiated in the cult of Lord Shiva so that he will become one of his best devotees," resounded the heavy voice of the head of the family. His wife was silenced.

Shri Karshanji trained his son and taught the rules of fast keeping and assured his son that if one was successful in that religious discipline, Lord Shiva would appear to him for his darshan! MoolShankar was excited at the prospect of having the darshan of Lord Shiva in his true form---live!

The temple was full of devotees on that chaturdashi night. Old and Young all had gathered with full religious fervour for the 'Charpraharic' Puja, ready with fasting, zeal and enthusiasm for the night vigil. The first and second praharic Pujas were performed by midnight. By that time of night, fatigue and the sign of drowsiness were overtaking the devotees one by one. Gradually all of them fell asleep,Some inside the temple including Shri Karshanji Tiwari, and most of them outside the temple.

Moolshankar was also being harassed by drowsiness, but he was determined to have the darshan of Shivji. So he kept himself awake by sprinkling his eyes now and then with cold water. The third part of the Parthiv Puja was yet to start. It was at that specific time that a very queer and sinister event occurred before him that left him flabbergarted. He saw a group of mice (rats) invading the Shivalinga and plundering the offerings while the idol of Shiva stood erect, inert and incapable of protecting his sanctity!

Moolshankar's faith in lord Shiva's idol took a sudden jolt with this incident. He woke up his father and questioned him about the all-powerfulness of Lord Shiva. His father could not answer to the queries of his son and countered his own statement he had made in favour of the fast-keeping and the vigil for the Chaturdashi night. That counter-statement of his father immediately destroyed his faith in the fake presence of Lord Shiva. He asked his father to send him back home immediately. The powerful Karshanji Lall Tiwari was powerless before the strong resolve of his son to leave at once all the paraphernalia of the fast and the vigil.

Back home, he asked his mother to serve him food. Amubaiji fed his son with food and sweets to his fill. She was very happy and satisfied. Moolshankar had a very sound sleep on that Chaturdashi night at home.

I am not referring to the other two events of the life of Moolshankar for lack of space. Although they were also be very important in the making of Swami Dayanand Saraswati in the future, I would like to dwell more on the event at the temple. When Moolshankar left his family and home for ever at the age of 21, he resolved to find out the truth about Lord Shiva in the first place. It took him about fifteen years to finally know the truth about Shiva (God) until he spent three years at the pious feet of his revered Guru Swami Virjanand Saraswati-the scholar par excellence of the Vedas and Sanskrit. His enlightenment was complete at the feet of

the Dandi Guru and took his blessings. Before bidding farewell to his Guru Swami Dayanand promised him solemnly to complete the great mission he had assigned to him.

What was that mission ?

He said to him most prophetically—"Dayanand go and restore the Vedas to the world, propagate true knowledge, destroy ignorance and bind faiths, free India from the bondage of slavery, eradicate poverty, secure the birthrights of millions of the poor, the disinherited and the downtrodden since ages in India, call the people of the world to worship ONE GOD as the Creator is only ONE and UNIQUE, teach the world that all mankind is but one family etc. "Vasudeiva Kutumbakum"

Swami Dayanand Saraswati created the Arya Samaj Movement to fulfill that great mission of his Guru. In the space of merely 8-9 years, he created an unprecedent revolution in the history of the world. He brought about reform in the mind and spirit of the world in all the spheres of life, thanks to the initial enlightenment he received at the Shiva Temple.

Sorry, I am feeling an urge to end this article with a sad note. Well, thanks to the teachings of Swami Dayanand Saraswati our elders made enormous sacrifice to make us what we are today. But are we doing justice to the memory of those souls and to the soul of our Guru by following sincerely and consistently their teachings and advice?

Are we also the enlightened souls they expected? Have we understood the Vedas or are we sincerely interested in studying the Vedas and the allied scriptures? Have we really understood the true meaning and values of yajnas in our daily life! Have we improved our diet habits and are we really living in the family in perfect harmony and love?

Let us remember our great Guru and our elders who followed his teachings and brought us to the shore where we are today, and let us once more pledge to restore our dying values. In this way we can express our gratitude to them. •

In the context of Maharshi Dayanand Jayanti

MAHARSHI DAYANAND SARASWATI

A Shimmering Star

By Renuka Bissessur (Miss), B.A.,(Hons)

"There lived in the far mystic East,
A 'Savant' of world-wide merit,
Swami Dayanand was his name,
Like a star religious dome.
He focused his soothing rays of Light.
And flooded the souls of men with Truth" !.....

An ideal son of India (poem) by William – B. La Borde

Swami Dayanand's birthday anniversary is a glorious opportunity to pay tribute to the spiritual attainment of a man whose life and work has immensely influenced our lives. In order to bring an innovating order in the decadent society of his time, he presented a correct and coherent - interpretation of the Vedas and allied – Vedic Literature. He was, and he will eventually remain an everlasting glowing Light to this World of suffering, toil, tension, pretension and sensation.

It is an occasion to make more widely known, most particularly to the younger generation, the life and works of Swamiji and the precious value of our cultural heritage. The monumental and substantial contributions of the Arya Samaj to the social, moral, spiritual and political regeneration of India is invaluable in every field of thought and culture. Swami Dayanand Saraswati has immensely contributed to the rich cultural heritage of India for its people as well as for Indians all over the world.

His precious teachings were entirely based on the following main foundations :

An unwavering strong belief in the supremacy and omnipresence of one God (Monotheism). God permeates the whole universe. Human beings should take keen interest in the affairs of the world and always endeavour to promote the welfare of all without distinction of caste, class, colour, creed, race or community.

The ultimate goal of life is to attain salvation (Moksha). We should always pursue noble values in life. Pain(s), pangs and sufferings in this world amount to hell and our happiness in this world is heaven. Heaven and hell exist here on earth and at no external place.

It is through the pursuit of 'Dharma' – that the very welfare of individuals and society can be virtually realised.

Public servants should render service to the whole community honestly and whole-heartedly and the state should plan with sagacity for the safeguard and welfare of one and all.

Parents who fail to educate their children are their greatest enemies.

In the same line of thought, it goes without saying that Swami Dayanand Saraswati endeavoured to purge humanity of the misleading dogmas – superstitions, idolatry and the vices entirely connected with casteism, untouchability, temples and priesthood. He always based his concepts on theism, monotheism and sharp rationalism and not on superstitions and miracles. With his generosity and kindness, Swamiji invited people of all creeds to come to an understanding and find out the greatest common denominator for theological life based on truth, love, mutual understanding and respect.

According to Swamiji, education should enable a person to understand and appreciate the cultural traditions of his country. In Satyartha Prakash, he has expressed the view that education truly allows the individual to distinguish between truth and falsehood, good and bad, pure and impure, permanent and temporary and appreciate the true nature of things. This leads to happiness and the attainment of salvation, which is permanent happiness.

Action speaks louder than words

We strongly need to rekindle the enlightening flame of spirituality in the mind, body, soul and spirit of our relatives and friends and familiarize them with the message of the Vedas. We should uphold the noble teachings of the great sage in our daily life. Only then, we would virtually realize the mission, decision, determination and vision of our great Vedic Seer – Maharshi Dayanand Saraswati.

By way of conclusion, it would be appropriate for me to terminate this article with the following famous words of famous -- President of Theosophical Society, who on the demise of Swami Dayanand Saraswati has pointed out the following:- *"A master spirit has passed away from India. Pandit Dayanand Saraswati…..... is gone, the irrepressive energetic Reformer, … ….whose mighty voice and passionate eloquence for the last few years raised thousands of people in India from lethargic indifference and stupor into* active patriotism, is no more."

"De martuis nil nisi Banum" – *meaning that "All our differences have been burnt with the body. We do remember only the grand virtues and noble qualities of our former colleague, teacher and late antagonist. We bear well in mind, but his life long devotion and dedication to the noble cause of Aryan regeneration; his ardent love for the grand philosophy of his forefathers, his relentless, untiring zeal in the work of the projected social and religious reforms; and it is with unfeigned sorrow that we now hasten to join the ranks of his mourners. In him, mother India has lost one of her noblest sons. A patriot in the true sense of the word -- Swami Dayanand laboured from his earliest years for the recovery of the lost treasures of Indian intellect…!"*

In short, we cannot simply regard this birthday anniversary of our dear Swamiji – as a celebration associated only with his personality. In fact, it should be an event of far greater significance to all the 'Arya Samajists' of the world. Indeed, his birth anniversary is an occasion for all of us to further improve our 'Selves' on the very path of 'Dharma'. This is definitely a fitting tribute we can offer to Swamiji at this juncture in order to immortalize his invaluable teachings and his precious work for the uplift of mankind.

The urgent need of the hour is to revive spiritualism and preach the Vedic message of Swamiji. We should actually put into practice his noble and inspiring teachings so that his unfinished work can be completed. •

ARYODAYE

Arya Sabha Mauritius

1,Maharshi Dayanand St., Port Louis,

Tel : 212-2730, 208-7504, Fax : 210-3778,

Email : aryamu@intnet.mu,

www.aryasabhamauritius.mu

प्रधान सम्पादक :
डॉ० उदय नारायण गंगू,
पी.एच.डी., ओ.एस.के., आर्य रत्न

सह सम्पादक :
श्री सत्यदेव प्रीतम,
बी.ए.,ओ.एस.के,सी.एस.के.,आर्य रत्न

सम्पादक मण्डल :

(१) डॉ० जयचन्द लालबिहारी, *पी.एच.डी*

(२) श्री बालचन्द तानाकूर, *पी.एम.एस.एम, आर्य रत्न*

(३) श्री नरेन्द्र घूरा, *पी.एम.एस.एम*

Printer :

BAHADOOR PRINTING LTD.

Ave. St. Vincent de Paul, Les Pailles,

Tel : 208-1317, Fax : 212-9038

WORLD VEDIC CONFERENCE – 2014

Paper presentation

Name : Pandit Yaswantlall Chooromoonay, *M.S.K., Arya Bhushan*

Institution : Arya Sabha Mauritius

Topic : Paryavaran aur Ved (पर्यावरण और वेद)

Introduction :

The word **'paryavaran'**, environment, is used to denote all that encircles us, elements all around in our surroundings. Existence of any living thing, either man, animal or plants depends largely on its ***paryavaran*** which is responsible for its adaptation and survival.

Environment consists of two components namely, ***biotic*** and ***abiotic***, that is, living organism and non-living materials. Living organisms are those living mainly on land, in water and in air. The non-living materials of the environment are land, water and air. All these elements, biotic and abiotic globally constitute what we call ***paryavaran***, that is, the environment. They are, as well, responsible for proper evolution of life in the entire universe.

Nowadays environmental science and ecology are disciplines of modern science. They have been established as science subjects not before the 20th century but their origin can be seen long back in the Vedic and ancient Sanskrit literature. Very long ago Vedic seers studied nature's drama minutely. They deeply observed sand-storms, cyclones, intense lightening, terrific thunderclaps, heavy rush of rain and swift flood in monsoon, the scorching heat of the sun and they concluded that these natural and environmental features witness their power beyond man's power. Vedic sages felt the greatness of these natural forces which they appreciated. And thus they attributed divinity to nature and environmental manifestations. Vedas established clearly that life on earth and the environment are ***complementary*** and not ***contradictory.***

Natural balance:

Through the Vedas we come to know that nature has maintained a status of **natural balance** between and among all the constituents or elements of all living creatures. This **natural balance** includes their environment, feeding habits, habitats and way of living. Any type of disturbance of any constituent of the environment beyond certain limits will definitely disturb that natural balance and inter-relationships established by God, the Creator. Such changes in the natural balance will give rise to lots of problems and dangers to all living creatures of the universe. The Vedas indicate that at the time of creation, all the different constituents of the environment came into existence with already set relationships with one another. The relationship of human beings with the environment is very natural, as they cannot live without it. From the beginning of the creation, even up to now, man is keen to know more and more about the environment in which he lives, for self-protection and benefit.

Three Regions of the Universe:

God had created this universe on Scientific Principles; that is why it is well measured. Vedas reveal another important feature of the universe that forms an integrated part of our environment. They say that the universe consists of three inter-wined webs, namely ***Prithivi***, the earth, ***Antariksh***, the aerial or the intermediate region, ***Dhyau***, the heaven or the sky. Scientific names have been given to these regions; **Observer Space** for ***Prithivi***, **Intermediate Space** for ***Antariksh***, **Light Space** for ***Dhyau***. In reference to environmental study, this division of the universe is regarded as the most important concept of the Vedas. All the three are inter-connected and inter-related, but the region the most closely related to living creatures is ***Pritivi***, the earth. It is our space, the space in which we are born, in which we live and in which we will die. The earth region is our own ***paryavaran***, our closest environment. The earth nourishes all living creatures with water and food products. She gives us shelter just like a baby in his mother's lap. Vedas have given to the earth the status of mother – *Dharti ma, Matri bhumi.*

Kand12, Sukta 1 of the Athavaveda is called Bhumi *Sukta or Prithivi Sukta.* This famous chapter contains 63 verses related directly to the earth. These verses indicate the environmental consciousness of Vedic seers who appear to have an advanced understanding of planet earth. They were aware about how to preserve

and protect it and how to make proper use of it.

Man's blunder towards environment:

It is observed with much concern that day by day, throughout the whole universe, there is a drastic degradation of the environment resulting in natural calamities, disasters and diseases. Everyday lots and lots of contaminants are introduced into the natural environment. This is the cause of many adverse changes in the atmosphere, in water and on land; the most threatening being **indoor and outdoor air pollution.**

Indoor pollution, commonly known as household air pollution, kills about 4.3 million people every year, according to World Health Organisation report 2014. Outdoor pollution which kills about 3 million people yearly is caused mainly by smoke from vehicles and industrial plants, Greenhouse gas, CFC, deforestation and so on. The world is actually witnessing drastic climatic changes due to global warming, forest fire, deforestation and affected ozone layer. Man only is responsible for all these environmental instabilities. Vedas consider these as a violation of the law of God and Nature, with heavy consequences.

Remedial Actions:

The Vedas strongly recommend all human beings to stick to **shauch** (**शौच**) that is, internal and external cleanliness and purity. Many countries in the world have set environment awareness campaign because pollution level has surpassed man's resistive power. The unprecedented United Nations Conference on Environment and Development (UNCED) held in Rio de Janeiro from 3rd to 14th June 1992 boosted up that universal awareness. 108 Heads of States or Government actively participated in that ***Earth Summit*** to find ways and means to protect the world from further deterioration. The principal theme of that 2-week Conference was **'Environment and Sustainable Development'.** Much follow-up and monitoring work has been done during the past twenty years.

The Vedas strongly recommend all individual to perform the ***Yajna***, known as the Sacrifice. The Yajna is considered to be the most efficient and effective way to preserve our environment. It is one among the topmost Vedic Philosophy as it has a direct and instant positive impact on the environment. Vedic seers consider it to be an integrated part of Vedic environmental science. Yajurveda and Rigveda describe it as "navel or nucleus of the whole world" – ***अहं यज्ञो भुवनस्य नाभिः*** *(aham yajyo bhuvanasya nābhih)*. This Yajna is going on in the universe since the beginning of the creation for the purpose of keeping maintenance of environmental constituents. It cleans the atmosphere with its medicinal smoke. It also helps in minimizing air pollution, in increasing crop yield, in activating rainfall, in protecting plants from diseases and in providing a disease-free, pure and energized environment .

Conclusion:

It is clear that Vedic vision to live in harmony with the environment was not merely physical but was far wider and comprehensive. Vedas recommend all human beings to live a hundred years ***जीवेम शरदः शतम्*** *(jivema sharadah shatam)* and this wish can be fulfilled only when living environment is clean, unpolluted and peaceful. Vedas also show the co-ordination among all natural powers of God for universal peace and harmony. A healthy environment is largely responsible for a peaceful life. •

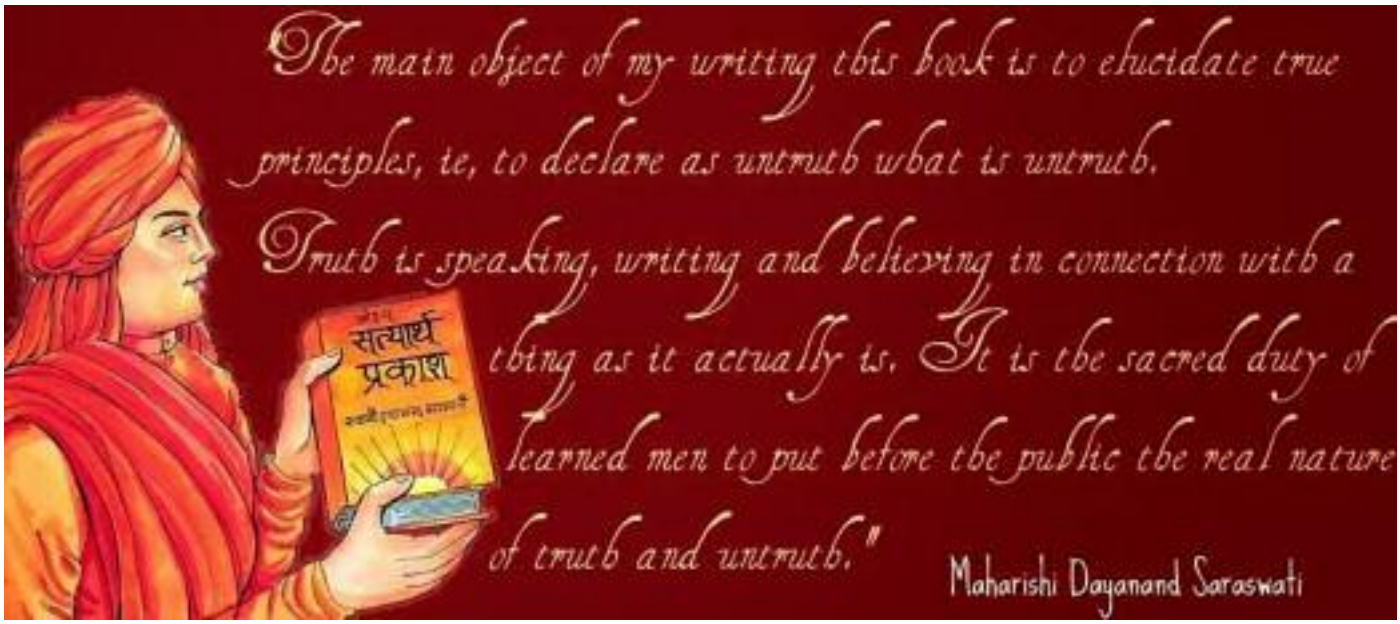

International Vegetarian Association (IVA) Across the Ocean

Dear Friends! Good News! National Vegetarian Association (NVA) has now become International Vegetarian Association (IVA) because we, IVA family are now expanding; as new branches have been established in U.S.A and CANADA. Some workshops in Chandigarh, India have already been organized and we are expecting same in near future, in Jalandhar and Bengaluru too. All this is because of you active IVA members, dedicated animal protectors, lovers, and real inspirers. Your hard work, struggle and unity inspire others across the ocean as Mauritius is the mother of IVA.

It's good to know that IVA runs under the aegis of Arya Sabha Mauritius since 2011 and till date more than 350 families have become vegetarians in this island.

Our Souls are getting pure, our selfless noble deeds are leading us to higher conscious level, and this is real success in this precious human life. God is always with us, our peace, balanced mind, non-reactive nature, maturity and focused view are the real keys to our success. Residential Seminars are playing vital role to strengthen us and with clear vision we have been welcoming new enthusiastic members. This is the time to reflect upon our strategy, contribution and awareness. To succeed in the mission we have Perseverance, Peace, Confidence, Knowledge and Ignorance to criticism as our real friends. Individually, we are one drop. Together we are an ocean. We are victorious because we are one.

शान्ति तुल्यं तपो नास्ति तोषान्न परमं सुखम्
नास्ति तृष्णापरो व्याधिर्न च धर्मो दयापरः

Shanti tulyam Tapo nsaasti Toshaann paramam sukham,
Naasti Trushnaaparo vyadhir na cha Dharmo dayaaparah.

i.e. There is no self-purifying process equal to attaining peace of mind, and no bliss equal to being satisfied over one's lot. There is no disease bigger than excessive desire or craving for any worldly thing and no tenet of Religion greater than kindness towards all living beings.

Darshanacharya Ashish Ji, Vedic Temple Atlanta, Lilburn, Georgia, USA